अरविन्द कुमार त्रिपाठी
द्वारा
पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन





त्योहार कैसे मनाते है
Festival Celebration

Puratan BANDA, Bundelkhand ka Sankshipt Varnan

Arvind Kumar Tripathi

ISBN : 978-93-5906-820-6

त्योहार कैसे मनाते है Festival Celebration

अध्याय शीर्षक	त्योहार कैसे मनाते है
सर्वाधिकार	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
आइ एस बी एन/ **ISBN**	**978-93-5906-820-6**
प्रकाशक	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक ग्राम – अछरौन्ड, बान्दा – 210 001 उत्तर प्रदेश
मूल्य	निःशुल्क, पुस्तक मित्र को देना
सन्स्करण	प्रथम, 01 अप्रैल 2020
आवरण/मुखपृष्ठ	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
शब्द – संयोजन	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
मुद्रक	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
सन्दर्भ/साभार/सौजन्य	अध्याय **Reference** देखे

Chapter Heading	**Festival Celebration**
Copyright @	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
ISBN	**978-93-5906-820-6**
Publisher	**Arvind Kumar Tripathi** **Village - Achharaund** **Banda - 210 001** **Uttar Pradesh**
Price	**Free, Circulate to Friends**
Edition	**First, 01 April 2020**
Cover Main	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
Word Compositor	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
Printer	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
Reference/ Gratitude/ courtesy	**Peruse Chapter - REFERENCE**

त्योहार कैसे मनाते है **Festival Celebration**

त्योहार कैसे मनाते है Festival Celebration

पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड – बान्दा क्षेत्र के त्यौहारों का मनाने का संक्षिप्त वर्णन

त्योहार कैसे मनाते है Festival Celebration

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

ज्योतिष –

धर्म भीरु होने के कारण ज्योतिष की मान्यता विशेष है। सौर गणना पर आधारित पूनौ (पूर्णिमा) अमावस (अमावस्या) यहां के सदाबहार लोक पर्व है। इन तिथियों पर ''सन्मूदी'' व्यन्जन बनते हैं व बनाते हैं। अनेक त्यौहार इन्हीं तिथियों पर केन्द्रित है, चाहे दिवाली हो, होली हो, रक्षाबन्धन, कार्तिक पूनम या अन्य। बुन्देली लोक जीवन में अधिकान्श शुभ कार्य सम्पन्न करने के लिए, पन्डितों से ''महूरत'' (मुहूर्त) लगाकर किए जाते हैं।

वैदिक काल से चली आ रही परम्पराओं सन्स्कार तथा पूजा पद्धतियों का अनुसरण बुन्देली सन्स्कृति की प्राचीनता निरूपित करते हैं। यहां के रीति–रिवाजों के गहन अध्ययन से पता चलता है कि यह वैदिक जीवन से प्रभावित तथा वैदिक विज्ञान सम्मत है।

वैदिक कालीन सन्स्कृति से न केवल सन्स्कार, अपितु रीति रिवाज भी प्रभावित है। उस समय बलिवैश्वदेव यज्ञ एक नियमित आचरण था। इसके अन्तर्गत 5देवताओं – गाय, चींटी, पक्षियों, श्वान और अग्नि को भोजन का प्रथम नैवेद्य समर्पित किया जाता था। सभी का प्रतीक ''अग्नि'' को मानकर प्रथम पकवान अग्नि को समर्पित करते थे। आज भी चूल्हे पर बने भोजन की प्रथम लोई, अग्नि को भेन्ट समर्पित करने की परम्परा है। गाय कुत्ते को ''कौरा'' निकालने की प्रथा कई क्षेत्रों में हैं।

क्षेत्र से सम्बन्धित पर्व उत्सव एवम् व्रत

सम्पूर्ण विश्व, धर्म प्रण, धर्म प्रधान देश है। भारत और यह क्षेत्र भी इससे बचे हुए नहीं हैं। देवी–देवताओं पर आधारित अनेक पर तीज–त्यौहार, पर्व सभी जगह मनाए जाते हैं। कुछ क्षेत्र अन्चल विशेष होते हैं और इनको मनाने का स्वरूप तथा पूजा विधान अलग अलग ही होता है, विभिन्नता हैं।

क्षेत्र के पर्व उत्सव व्रत और पूजन यहां की सन्स्कृति विशेष रूप से निरूपित करते हैं और फिर

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता

की भावना सर्वोपरि है। इस क्षेत्र में अगर कहा जाए कि यह मातृ कुल के द्वारा प्रतिदिन प्रतिबिम्बित है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कुछ त्यौहार महिला सम्मान में ही मनाए जाते हैं। ''कुनघुसुं'' पर्व में बहुओं की पूजा होती है। ''हरि जोत'' में बेटियों की पूजा होती है। सुहागिनों के नाम पर सौभाग्यवती स्त्रियों को महावर तथा सुहाग चिन्ह से सजा कर, उन्हें ससम्मान पूजा में शामिल करना, गौरा देवी, नवरात्रि आदि इसी का विधान है। कृषि कर्म के अनुरूप हरायतें, गाय बछड़ों की पूजा, दसरईयां, कुठला (बांस व मिट्टी से बना हुआ एक छोटा सा कोठा) पूजन, जिसमें ऊपर से अनाज भर दिया जाता है। तत्पश्चात उसको ऊपर से बन्द कर दिया जाता है। नीचे एक छेद होता है उससे से आवश्यकता अनुसार अनाज उपयोग हेतु निकाल लिया जाता है और उस क्षेत्र को पुनः बन्द कर दिया जाता है। इस तरह से यह एक प्रत्येक दिशा से पूर्णतया बन्द कमरा है जिसके अन्दर कीड़े मकोड़े या अन्य परजीवी प्रवेश नहीं कर सकते और अनाज नमी, सीलन आदि से बचा रहता है) आदि अनेक पूजन विधान है। करवा चौथ पर, पति के कल्याण कामना का पर्व उल्लास से महिलाएं मनाया करती हैं।

अनेक देवी–देवता, ग्राम देवता, कुलदेवता, क्षेत्र देवता आदि को पूजना यहां की परम्पराओं में शामिल है। वस्तुतः देखने की बात यही है कि इन सभी के मूल में महिलाओं की मुख्य भूमिका महत्वपूर्ण है। अगर यह कहा जाए के धर्म और व्रत पूजन केवल महिलाओं के कारण जीवित हैं तो अनुचित न होगा। वैसे भी घर, परिवार, जमीन, व्रत–त्योहार, सभी में अगर स्त्री सम्मिलित ना हो तो, पुरुष प्रधान पर्व भी पूरे नहीं हो सकते। कोई भी व्रत हो, कोई भी त्यौहार हो, भोजन व सफाई आदि तो होनी ही है और यह कार्य केवल स्त्रियों पर ही निर्भर है। पुरुष इस तरह के काम करने में अपना सम्मान व इज्जत जाती हुई महसूस करता है।

अनेक उत्सव, पर्व पर श्रद्धापूर्वक कही जाने वाली कहानियां, इतिहास के महत्वपूर्ण सूत्रों को जोड़ती हैं और प्रतिबिम्बित प्रतिबिम्ब भी दिखाती हैं। उनका अनुशीलन करना अपने आप में एक महत्वपूर्ण काम है। लगभग हर पर्व पर बनाए जाने वाले आलेखन, जिन्हें ''लिखना'' या थापे भी कहते हैं, कला शिल्प को प्रदर्शित करता है। आलेखन, वर्ष भर में मनाए जाने वाले पर्वो, उस समय के व्रत अनुष्ठान में शामिल हैं। रंगभरी या रंगोली जो कि किसी क्षेत्र में रोज का काम है, विशिष्ट अवसरों पर घर परिवार के लोग उसमें अपने विशेषज्ञता भी दिखाते हैं।

त्योहार कैसे मनाते है **Festival Celebration**

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

क्रम क्रम के अनुसार सबसे पहले उत्सव व्रत और अनुष्ठान को लेते हैं। यह मुख्य हैं, इनके अलावा और भी बहुत से उत्सव व्रत और अनुष्ठान हैं जो इस पुस्तक में कलेवर वृद्धि के भय से सम्मिलित नहीं हो पाए हैं।

सभी सन्स्कार, रीति–रिवाज, लोकाचार एवम् दैनिकचर्या के अनेक कार्य जिस वैज्ञानिकता का सन्केत देते हैं, उससे प्रतीत होता है कि इस अन्चल के सामाजिक मनीषियों ने सामान्य जीवन को विज्ञान सन्गत एवम् पर्यावरण बोधक बनाने के लिए महनीय प्रयास किया था। पीपल, बरगद, आंवला, छेन्कुर, तुलसी, केला आदि अनेक वनस्पतियों को पूज्य कोटि में रखा गया है। पर्वतों, नदियों, सरोवर की पूजा की जाती है। उनके प्रति देवत्व की भावना, उनकी रक्षा के प्रति समाज–बोध को बहुत जागृत करती है। भोजन बनाने के पश्चात तुलसीदल डालकर, ठाकुर जी को प्रसाद लगाकर ही भोजन प्राप्त करना तथा तुलसी के बिरवा पौधे को नित्य जल दान करके पोषित करना, दैनिक जीवन में महत्ता व महत्व प्रमाणित करती है। यह तुलसी का वैज्ञानिक पक्ष है जो दैनिक दिनचर्या के माध्यम से लोक जीवन का अंग बना हुआ है। अनेक ऐसे विधान हैं जो बुन्देली लोक जीवन में वैज्ञानिक सोच को पुष्ट करते हैं किन्तु युगों के अन्तराल में अनेक रीतियों या लोकाचारों का स्वरूप विकृत हो गया अथवा वर्तमान समय में उस उनका पक्ष समझने में असमर्थ जन उन्हें ''ढकोसला'' ''रूढ़िवादिता'' ''पुरातन पन्थी'' आदि कहकर उनका उपहास करने लगे जबकि वे शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित हैं।

उदाहरण के लिए शिशु जन्म के कुछ दिनों के बाद शिशु को घृत, मधु, स्वर्णकण, आदि चटाने की परम्परा है। यह सभी पदार्थ शोधक, विकार नाशक तथा देह पुष्ट करने वाले हैं। मुन्डन के पश्चात बेसन की लोई मस्तक पर फेरने या लेपन करने की परम्परा है, मुन्डन के कारण उत्पन्न घाव आदि से बचाव का लोक विज्ञान है। प्रसूता को ''सौर'' में अजवाइन का धुआं देने, नीम और लोंग के जल से स्नान कराने, पीपर(लम्बा शहतूत की तरह का एक सूखा मसाला) का अति प्रयोग करना, चरुआ (नया व छोटा घड़ा) के जल में वनस्पतियों को डालकर, उसका जल व काढ़ा देने का विधान आयुर्वेद सम्मत है। चेचक(स्मॉल पॉक्स) होने पर घर में सब्जियों में छौंका(छौंक) लगाना, नाई से बाल बनवाना, धोबी को धोने हेतु कपड़े देने का निषेध है क्योंकि इससे इस सन्क्रामक रोग के विषाणु का अन्य सन्स्थानों पर जाकर सन्क्रामकता फैला सकते हैं अतः इनका लोकहित में वर्जन है।

इस दृष्टि से यहां के सन्स्कारों, लोकाचारों तथा रीति–रिवाजों का वैज्ञानिक अध्ययन एक स्वतन्त्र शोध का विषय है। पुस्तक में उसका विस्तृत अध्ययन, लेखन ना तो अभीष्ट है और ना ही व्यवहारिक। व्यवहार रूप में यह एक स्वतन्त्र विषय है और विस्तृत भी है। इस लेखन में जो लोग कला, आलेखन एवम् रचनाएं देखने को मिली, पूरे भारतीय कला का महत्वपूर्ण अंग है। इस पुस्तक में प्रयुक्त प्रतीकों का वर्णन एवम् विस्तृत अध्ययन है। अन्य लेखन में संक्षिप्त प्रकाश ही डाला जा सका है इस पुस्तक में अधिकान्शतः बुन्देलखण्ड, विशेषतः बान्दा और आसपास की भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया गया है ताकि मौलिकता बनी रहे। उन शब्दों का शुद्ध हिन्दी में क्या अर्थ है कोष्ठों के अन्दर दिया गया है। अगर किसी शब्द का अर्थ समझ में ना आए तो कोष्ठ में दिए गए शब्दों से उसका मूल अर्थ क्या है? पता किया जा सकता है। पुस्तक में बहुत से ऐसे शब्द, लोकाचार, देवी–देवता, सन्गीत मुहावरे शामिल हैं जिनका उल्लेख किसी अन्य लेखक की पुस्तकों में, या ऐसे सुन्दर पुस्तकों में भी नहीं मिलता क्योंकि बुन्देलखण्ड विशेषतः बान्दा और आसपास के इलाकों में इससे सम्बन्धित ऐसा कोई भी कार्य या पुस्तक लिखी ही नही गई। इस क्षेत्र के सामाजिक आर्थिक व अन्य गतिविधियों का कहीं भी उल्लेख नहीं है। क्योंकि यह पुस्तक लेखन केवल इसी क्षेत्र को केंद्र में रखकर किया गया है। इस पुस्तक में उन सब चीजों का भी उल्लेख हो गया है, जिसका कहीं भी अन्य किसी भी प्रकाशित पुस्तकों में नहीं है। इससे जाहिर है कि बान्दा और क्षेत्र विशेषकर बुन्देलखण्ड में सन्चार साधनों की कमी की वजह से घनघोर जंगल में किसी एक क्षेत्र में, जहां पर आज तक कोई ना गया हो, उसका विवरण दिया है। कुछ पुस्तकें जैसे गजटेयर जिसे विभिन्न स्थानों के एक सन्दर्भ के रूप में लिया जा सकता है, में भी कुछ शब्दों का केवल उल्लेख भर किया गया है, लेकिन वर्णन नहीं। क्षेत्रीय शब्दों का व कहानियों का कहीं कोई उल्लेख नहीं है – जैसे हरदौल, कारस देव, आगे ऐसे और अन्य बहुत से देवी देवता हैं, ग्राम देवता है जिनका उल्लेख कहीं भी सम्मेलन में नहीं है। सोहर, सुआटा, रामा जैसे नामों का केवल उल्लेख ही किया गया है, लेकिन इनके पीछे इन का विस्तृत वर्णन कहीं भी नहीं है। दिवाली, चाचर, मोहनिया नृत्य जो इस क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय हैं का कहीं भी विस्तृत चर्चा नहीं है। जबकि लोकगीत और लोकनृत्य की दृष्टि से बुन्देलखण्ड अत्यन्त समृद्ध है और विशेष स्थान भी रखता है। अगर किसी चीज के बारे में विशेष ज्ञान ना हो, तो कथित लेखक व विद्वान उनका विशेष रूप से मजाक उड़ाते हैं और उल्टे सीधे शब्दों का उल्लेख कर उसे हास्यास्पद बना देते हैं। जैसे जालौन गजटेयर में बिछिया और बिछुआ का अन्तर नहीं दर्शाया गया क्योंकि इसके बारे में जानकारी ही नहीं तो इसको मजाक में उड़ा देना पर्याप्त है। बिचुआ, बिछिया या बिछुआ का अन्तर विस्तृत है बिचुआ या बिछुआ का आभूषण कमर के गहने हैं जबकि पैर के अंगुलियों में पहने जाने वाला आभूषण बिछिया कहा जाता है। इसी तरह सन्स्कारों में जो केवल हिन्दू और सनातन धर्म में ही हैं के बारे में विदेशी लेखकों को कोई जानकारी नहीं है अतः उनके द्वारा दी गई सूचनाएं अपर्याप्त है। विवाह समारोह के बारे में भी वही सूचनाएं दे दी गई जो राष्ट्रीय स्तर पर धर्म ग्रंथों में उल्लेखित हैं। क्षेत्र के अनुसार शैलियां, परम्पराएं, नीतियां

बदलती चली जाती हैं और उनके बारे में गलत या अपर्याप्त सूचनाएं दी गई। कारण सन्चार व्यवस्था का ना होना और घर बैठकर किताबों की सहायता से वर्णित करना। बुन्देलखण्ड में उनकी विवाहपरक, लोकशैली, परम्परा और रीतियों की कहीं भी कोई चर्चा नहीं है। यही हालात व स्थिति त्योहारों के बारे में हैं। राष्ट्रीय स्तर के त्यौहार नवरात्रि, महा अष्टमी, रामनवमी, नागपंचमी, रक्षाबन्धन, जन्माष्टमी, दशहरा, करवा चौथ, दिवाली, कार्तिक पूर्णिमा, शिवरात्रि, बसन्त पंचमी, होली इत्यादि की ही चर्चा है लेकिन अन्य तीज त्यौहार जो बुन्देलखण्ड विशेषता बान्दा क्षेत्र के हैं, का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं है। बाल्मीकि और रविदास जयंती का उल्लेख है, लेकिन उनके मनाए जाने का लोक परख दृष्टिकोण का कहीं कोई उल्लेख नहीं। सन्क्रान्ति या दुड़की जैसे पर्व किसी भी पुस्तक में विद्वानों की दृष्टि से अछूता रह गये। यह पर्व इतना महत्वपूर्ण है कि इसे 3 दिन तक मनाया जाता है। दीपावली के पश्चात गोवर्धन पूजा के सन्दर्भ में जालौन गजटेयर का उल्लेख हास्यास्पद प्रतीत होता है। गोवर्धन पूजा महिलाओं द्वारा पुत्र के कल्याण एवम् कुशल क्षेम के लिए की जाती है, ऐसा लिखा है। वस्तुतः गोवर्धन सन्रचना महिलाओं द्वारा की जाती है किन्तु उसका पूजन परिवार का पुरुष मुखिया ही करता है।

1	गणगौर/ गनगौर	चैत्र	शुक्ल पक्ष	तृतीया
2	चैती पूनो	चैत्र	शुक्ल पक्ष	पूर्णिमा
3	भैयादूज/भाई दोज	चैत्र	कृष्ण पक्ष	प्रतिपदा
4	दौज	चैत्र	कृष्ण पक्ष	द्वितीया क्र 46 देखें
5	शीतला अष्टमी	चैत्र	कृष्ण पक्ष	अष्टमी
6	जगन्नाथ का पूजन	चैत्र	अन्तिम सोमवार	अन्तिम सोमवार
7	दुर्गा आठें	चैत्र		अष्टमी
8	अक्ती/अक्षय तृतीया	बैशाख	शुक्ल पक्ष	तृतिया
	निम्ब सप्तमी	बैशाख	शुक्ल पक्ष	सप्तमी
9	आसमाई	बैशाख	कृष्ण पक्ष	द्वितीया
10	हरायतें लेना	बैशाख	कृष्ण पक्ष	अमावस्या, जुताई का प्रथम दिन
11	वर बरसातें	ज्येष्ठ	कृष्ण पक्ष	अमावस्या
12	कुनघुसू पूर्णिमा	आषाढ़	शुक्ल पक्ष	पूर्णिमा
13	गुरु पूर्णिमा	आषाढ़	शुक्ल पक्ष	पूर्णिमा
14	असाढ़ी देवता	आषाढ़		
15	सावन तीज	श्रावण	शुक्ल पक्ष	तृतीया
16	नाग पाँचे/नाग पंचमी	श्रावण	शुक्ल पक्ष	पंचमी
17	कुठला पूजन	श्रावण	शुक्ल पक्ष	नवमीं
18	सांउन सुदी नमें	श्रावण	शुक्ल पक्ष	नवमीं
19	रक्षाबन्धन	श्रावण	शुक्ल पक्ष	पूर्णिमा
20	हरजोती या हरीजोत	श्रावण	कृष्ण पक्ष	अमावस्या
21	हरियाली अमावस्या	श्रावण	कृष्ण पक्ष	अमावस्या
22	बाबू की दौज	भाद्रपद	शुक्ल पक्ष	द्वितीया
23	हरितालिका व्रत	भाद्रपद	शुक्ल पक्ष	तृतीया
24	गणेश चतुर्थी	भाद्रपद	शुक्ल पक्ष	चतुर्थी
25	ऋषि पंचमी	भाद्रपद	शुक्ल पक्ष	पंचमी
26	मौराई छठ	भाद्रपद	शुक्ल पक्ष	छठ
27	सन्तान सप्तमी	भाद्रपद	शुक्ल पक्ष	सप्तमी
28	गड़ालैनी आठें	भाद्रपद	शुक्ल पक्ष	अष्टमी
29	डोल ग्यास	भाद्रपद	शुक्ल पक्ष	एकादशी
30	ओक–दुआस/द्वादशी	भाद्रपद	शुक्ल पक्ष	द्वादशी
31	अनन्त चतुर्दशी	भाद्रपद	शुक्ल पक्ष	चतुर्दशी
32	कनागत/पितृपक्ष	भाद्रपद	शुक्ल पक्ष	पूर्णिमा से अमावस्या
33	भुजरियाँ	भाद्रपद	कृष्ण पक्ष	प्रतिपदा
34	हरछठ /हलषष्ठी	भाद्रपद	कृष्ण पक्ष	षष्ठी
35	कन्हैया आठें /जन्माष्टमी	भाद्रपद	कृष्ण पक्ष	अष्टमी
36	बुढवाँ मंगल	भाद्रपद	अन्तिम मंगलवार	अन्तिम मंगलवार
37	नवरात्रि सुआटा/नवरात्रि	आश्विन(क्वार)	शुक्ल पक्ष	प्रतिपदा से नवरात्रि तक
38	दसैरा/ दशहरा	आश्विन(क्वार)	शुक्ल पक्ष	दशमी

त्योहार कैसे मनाते है **Festival Celebration**

39	शरद पूर्णिमा	आश्विन(क्वार)	शुक्ल पक्ष	पूर्णिमा
40	दुर्गा आठें	आश्विन(क्वार)	शुक्ल पक्ष	
41	साँझी	आश्विन(क्वार)	कृष्ण पक्ष	श्राद्ध पक्ष
42	महालक्ष्मी	आश्विन(क्वार)	कृष्ण पक्ष	अष्टमी
43	मामुलिया	आश्विन(क्वार)	कृष्ण पक्ष	
44	उरैन	आश्विन(क्वार)	कृष्ण पक्ष	कृष्णपक्ष
45	गौधन	कार्तिक	शुक्ल पक्ष	प्रतिपदा
46	भैयादूज/भाई दोज/दौज	कार्तिक	शुक्ल पक्ष	द्वितीया क्र 4 देखें
47	गोपाल अष्टमी	कार्तिक	शुक्ल पक्ष	अष्टमी
48	इच्छानौमी	कार्तिक	शुक्ल पक्ष	नवमी
49	देवोत्थानी एकादशी	कार्तिक	शुक्ल पक्ष	एकादशी
50	करवा चौथ	कार्तिक	कृष्ण पक्ष	चतुर्थी
51	अहोई आंठे/अहोई अष्टमी	कार्तिक	कृष्ण पक्ष	अष्टमी
52	धनतेरस	कार्तिक	कृष्ण पक्ष	,त्रयोदशी
53	नरक चौदस	कार्तिक	कृष्ण पक्ष	चतुर्दशी
54	दीपावली/दिवारी /	कार्तिक	कृष्ण पक्ष	अमावस्या
55	गोधन गोवर्धन पूजा(परेवा)			
56	मकर सन्क्राति	अगहन		14 जनवरी
57	भंवरात	अगहन		15 जनवरी
58	बाबू की दौज	माघ	शुक्ल पक्ष	द्वितीया
59	बसन्त पंचमी	माघ	शुक्ल पक्ष	पंचमी
60	सूर्य पूजा	माघ	शुक्ल पक्ष	अन्तिम सोमवार
61	बड़े गणेश	माघ	कृष्ण पक्ष	चतुर्थी
62	होली/होलिकोत्सव	फाल्गुन	शुक्ल पक्ष	पूर्णिमा
63	शिवरात्रि	फाल्गुन	कृष्ण पक्ष	चतुर्दशी
64	सुहागलें गौरइयां			मंगल शुभ कार्य पर
65	सुहागलें हुर्रइयां			मंगल शुभ कार्य पर
66	सुहागलें दशारानी			मंगल शुभ कार्य पर
67	सुहागलें बीजासेन			मंगल शुभ कार्य पर
68	सुहागलें सन्कटा			मंगल शुभ कार्य पर
69	सुहागलें पुरखन			मंगल शुभ कार्य पर
70	सुहागलें			मंगल शुभ कार्य पर
71	कोहबर या मैहर पूजा			विवाह
72	आरते–मौरते व हाथे–थापे			विवाह के अवसर
73	ढरकौना			दीपावली व देवठान पर
74	भये के सांतिया			जन्म के अवसर
75	चरूआ			जन्म समय
76	दस्टौन			जन्म समय
77	सोमवती अमावस्या			

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

अतिथि देवो भव

बुन्देलखण्ड के बान्दा में आज भी अतिथि देवो भवः की परम्परा कायम है, भले ही यह परम्परा धीरे–धीरे समाप्त होती जा रही है, लेकिन तीज त्योहार और अन्य कार्यक्रमों के समय यह गान्व में विशेष तौर से आज भी देखी जा सकती है। यहां पर मेहमान को अतिथि को देवतुल्य मानकर सम्मान दिया जाता है। ऐतिहासिक महोत्सव में जैसे कजली मेला या अन्य इसी तरह के अन्य महोत्सव में चाहे वह बट अमावस्या हो या सोमवती अमावस्या– ज्यादा सन्ख्या में नाते रिश्तेदार व मित्र के यहां आते जाते हैं। एक–एक घर में चार से 10 लोग तो आ ही जाते हैं अतिथियों के आने पर उनके खाने–पीने व रहने का पूरा सम्मान के साथ ख्याल रखा जाता है। जब तक मेला खत्म ना हो जाए, कार्यक्रम खत्म ना हो जाए, उनकी खातिरदारी की जाती है और इसमें कोई कमी देखने को नहीं मिलती। यद्यपि मेहमान के आने पर खर्च काफी बढ़ जाता है फिर भी बिना मेहमान की जानकारी के उसको सम्मान सहित विदा किया जाता है। ''अतिथि देवो भव'' बुन्देलखण्ड में परम्परा वर्तमान में समाप्ति के कगार पर है।

भारत एक बहुत बड़ा देश है। यहाँ हर प्रदेश की वेशभूषा तथा भाषा में बहुत बड़ा अन्तर दिखायी देता है। इतनी बड़ी भिन्नता होते हुए भी एक समानता है जो देश को एक सूत्र में पिरोये हुए है। वह है यहां की सान्स्कृ तिक–एकता तथा त्यौहार। स्वभाव से ही मनुष्य उत्सव–प्रिय है, महाकवि कालिदास ने ठीक ही कहा है–

उत्सव प्रियः मानवाः।

पर्व हमारे जीवन में उत्साह, उल्लास व उमंग की पूर्ति करते हैं।

बुन्देलखण्ड के पर्वों? की अपनी ऐतिहासिकता है। उनका पौराणिक व आध्यात्मिक महत्व है और ये हमारी सन्स्कृतिक विरासत के अंग हैं। कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण त्यौहारों का विवेचन हिन्दी मासों के अनुसार किया जा रहा है।

सभी त्यौहार और पर्व बड़ी श्रद्धा विश्वास के साथ मनाये जाते हैं, जिनमें किसी न किसी उद्देश्य की भावना अवश्य छिपी रहती है। चाहे पापों का प्रायश्चित हो, धार्मिक सामाजिक स्नेह, बन्धन की कामना, सुखी जीवन व सौभाग्य की कामना हो, सम्पूर्ण आकान्क्षायें इन पर्वों में विद्यमान हैं।

बुन्देलखण्ड है प्राण हिन्द, का अमर यहां की सन्स्कृति है।
ऋषियों की यह तपस्थली है, वीर प्रसूता धरती है।।
विन्ध्यान्चल और चित्रकूट का गाता युग गाथा।
पन्ना में हीरा छत्रसाल की, काल्पी गाती व्यास कथा।।
कुंइयां परासन पारासर की कथा गा रही वेदवती।
जैन धर्म की तीर्थ देवगढ़, सांची प्रतीक है बौद्धमती।।
वीरभूमि है नगर महोबा, नृप परमाल का राज्य रहा।
आल्हा ऊदल के पौरुष का कीरत सागर बता रहा।।
जमुना चम्बल और नर्मदा टोंस विन्ध्य की सीमा है।
केन धसान, पहूज बेतवा अन्य सहायक नदियाँ है।।
लक्ष्मी बाई इसी धरा में क्रान्ति जगाने आयी थी।
जिसके पौरुष से जागी, झान्सी वाली तरुणाई थी।।
कहने भर को वह नारी थी पर स्वतन्त्रता चिनगारी थी।
मनु की वही छबीली जन जन में, बन क्रान्ति समाई थी।।

पर्व व त्योहार और व्रत परिभाषित

बुन्देलखण्ड में पूरे वर्ष ऋतुओं के अनुसार व्रत, पर्व, त्योहार और उत्सव (100 से अधिक)होते रहते हैं। जीवन से इनका सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सान्स्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लोक जीवन में अनेक कार्य तिथिवार तथा त्योहारों के अनुसार ही किये जाते हैं। इनमें सामूहिक भावना का समावेश होता है। त्योहार लोक जीवन में रस का सन्चार करते है। ये हमारे सुख के प्रदर्शन होते हैं। जीवन में जो अभाव हो, उसी की पूर्ति हेतु मनुष्य सन्लग्न रहता है। बुन्देलखण्ड में कृषि कार्य की प्रमुखता होने के कारण फसल बोने, उसकी हरियाली और समृद्धि आने तक की क्रियाओं से सम्बन्धित अनेक पर्व और त्योहार होते हैं।

त्योहार कैसे मनाते है Festival Celebration

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

पर्व व त्योहार में अन्तर

पर्व शब्द से किसी एक विशेष बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित हो जाता है

पर्व का अर्थ होता है ''भरना'' अर्थात् जिस प्रकार गन्ने के पर्वों(पोरों) के मध्य रस मरा रहता है, ठीक उसी प्रकार पर्व आने पर जीवन में रस भर जाता है। जैसे– दीपावली का पूजन, कार्तिक बदी अमावस्या को सन्ध्या के समय होना निश्चित है।

होली के त्योहार पर होलिका दहन किया तो जाता है परन्तु समय निश्चित नहीं रहता है। इस कारण उसे त्योहार कहते हैं।

त्योहार पर बहुत पहले से तैयारी की जाती है। दीपावली के पूजन के अतिरिक्त उसको आरम्भिक काल से तो हम त्योहार के नाम से ही पुकारेंगें क्योंकि उसकी तैयारी बहुत पहले से की जाती है।

व्रत का अर्थ सन्कल्प लेना होता है। यह सन्कल्प– भोजन न करना, विशेष भोज्य पदार्थ का त्याग करना या मौन रहना आदि होते हैं। व्रत का सम्बन्ध दीक्षा लेने, कोई अनुष्ठान करने या मान्गलिक कार्य करते समय भी रखे जाते हैं। जब हम वर्ष में एक बार या किसी विशेष प्रयोजन हेतु व्रत रहते हैं तब वह नैमित्तिक व्रत हो जाते हैं। किन्तु जब प्रति सप्ताह या प्रतिमाह में निश्चित दिन या तिथि के अनुसार व्रत रखते हैं तो उसे नित्यव्रत कहते हैं। यह व्रत नियमानुसार किये जाते हैं। नित्य व्रतों का उद्यापन (समापन विधि विधानानुसार) किया जाता है। व्रत रखते समय शरीर और मन दोनो का संयम आवश्यक माना गया है। कष्टकारी व्रतों को त्योहार में परिवर्तित कर देने से उसके टूटने की आशंका नहीं रहती। चन्द्रमा को अर्ध्य देकर व्रत तोड़ने वाले जैसे– करवा चौथ, अहोई अष्टमी पर महिलायें दिन भर भित्ति चित्रान्कन, पूजा के विशेष पकवान बनाने की तैयारियों में जुटी रहती हैं। इसी प्रकार निर्जला व्रत ''तीजा'' में रात्रि जागरण किया जाता है। भजन–कीर्तन करते हुये रात बिताने की परम्परा है। देवठान, हरछठ और जन्माष्टमी आदि भी ऐसे ही व्रत हैं, जिनमें व्रत रहते हुये चित्रान्कन करने की परम्परा है। महालक्ष्मी व्रत करने का सन्कल्प याद रखने का अनोखा तरीका बुन्देलखण्ड में प्रचलित है। '' गठा लैनी आठैं '' से महालक्ष्मी तक प्रतिदिन पवित्र डोरे में गान्ठ लगाते हैं। जिससे व्रत रखने का सन्कल्प याद रहे। अधिकान्श व्रत व्यक्तिगत तथा त्यौहार सामूहिक होते हैं। व्रत में तप और योग का अद्‌भुत सन्योग होता है इसमें स्वेच्छा से विरक्ति तप तथा चित्तवृत्ति पर नियंत्रण करना योग है। त्योहार पारिवारिक एवम् सामाजिक क्षेत्र में एकता तथा धर्म सम्भाव के सूत्राधार हैं। ''मांय की पूजा'' या ''बाबू की दौज'' केवल परिवार के सदस्यों द्वारा की जाने वाली पूजा है, जिसमें सदस्य के न उपस्थित होने पर भी उसका कौरा(प्रसाद) निकाला जाता है। त्योहार व लोकोत्सव में निहित तत्व ही उन्हें महत्व दिलाते हैं। सम्बन्धित देवता तथा उद्देश्य ही मानवीय विश्वास को सबलता प्रदान करते हैं। इन त्योहारों में वृक्षों का भी अति महत्व होता है। सोमवती अमावस्या पर पीपल की और तुलसी की परिक्रमा करना, वट अमावस्या पर वट वृक्ष की परिक्रमा करना, इच्छा नवमीं पर आंवले की परिक्रमा आदि वृक्षों के ईश्वरीय गुणों को प्रगट करती है। नारी–जीवन में सुहाग–व्रतों का अत्यन्त महत्व है। करवा–चौथ, तीजा, गणगौर, वट सावित्री व्रत इत्यादि पर पति की दीर्घायु की कामना करती नारी भारतीय सन्स्कृति के मूल्यों की रक्षा करती हैं। हमारे धार्मिक तथा सान्स्कृतिक मूल्य सदैव से विश्व में आदर की दृष्टि से देखे जाते रहे हैं। तीज–त्योहार हमारे जीवन के रस–भीने पन्ने हैं जो जीवन में मनोरंजन तथा नवीनता लाते हैं। लोक–जीवन के त्योहारों में भूमि और भित्ति अलकरण तथा चित्रण करने की लोक–परम्परायें हैं। अवसर विशेष की कथा–कहानियां और पूजन विधान भी होती है। समस्त कारक वर्ष भर होने वाली पूजा और त्योहारों में विविधता उत्पन्न करने में सहायक होते हैं

कुछ प्रमुख त्यौहार भले ही राष्ट्रीय स्तर पर सर्वत्र मनाए जाते हैं किन्तु बुन्देलखण्ड में उनके मनाने की रीत रिवाज विशिष्ट है। दशहरे के दिन आबाल, वृद्ध, वनिता, सब एक दूसरे के घर मिलने जाते है। बान्दा में एक विशिष्ट तरह से दशहरा मनाया जाता है। पूरे इलाके को 5 हिस्सों में बांट दिया गया है और 5 दिन तक दशहरा मनाया जाता है। इस तरह से 5 दिन में पूरे बान्दा के परिवार एक दूसरे से, एक दूसरे के घर जाकर, आपस में मुलाकात मिलन करते हैं। अगर यही त्यौहार केवल 1 दिन मनाया जाता तो कुछ लोगों के घर जाया जाता और कुछ इस मसले में छूट जाते। प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि सब मेरे यहां आएंगे और इस तरह कोई किसी के यहां नहीं जाता। अब एक मोहल्ले का व्यक्ति दूसरे मोहल्ले के व्यक्तियों का इन्तजार करता है और इस तरह से सब एक दूसरे के घर में जाते हैं। स्वागत पर आगतों के सम्मान में प्रत्येक घर में कुछ ना कुछ भोजन योग्य चीज, जो उसके समृद्धि के अनुसार होता है, तैयार रखता है। लेकिन मुख्य चीज है पान का बीड़ा जिसमें लौन्ग, सुपारी, कत्था, चूना, इलाइची व तम्बाकु तैयार रखा जाता है और स्वादानुसार या व्यक्ति के स्वाद अनुसार तुरंत तैयार करके दिया जाता है। अगर कोई मिलने ना आए तो उसको अन्यथा लिया जाता है और अच्छा नहीं माना जाता। बुन्देलखण्ड के हमीरपुर जिले में कुरारा के बारा कंडोरा नामक गान्व में रावण के प्रतीक पर बन्दूक या अन्य का निशाना लगाने की परम्परा सैकड़ों वर्षो से चली आ रही है।

त्योहार कैसे मनाते है Festival Celebration

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

महोबा की कजलियों के मेले में लोग प्रेम से, आनंदविभोर होकर आलिंगनबद्ध हो मिलते हैं, कजलियां देते हैं और बड़ों का चरण स्पर्श कर आशीर्वाद प्राप्त करते है। अलग अलग त्योहारों की ऐसी अनेक बातें हैं जो अपने आप में विशिष्ट हैं और क्षेत्र की विशेषता को ला देती है। सूआटा, नौरता/नवरात्रि, शक्ति, टेसू, अकती यहां के विशिष्ट लोक पर्व हैं। यह त्यौहार बालक बालिकाओं को जीवन चक्र में उतरने का पूर्व प्रशिक्षण देते हैं। यहां लोक देवता, लोक सन्गीत, रीति रिवाज सभी में बुन्देली–पन्थ व छाप है।

त्योहार व उद्योग

तरह–तरह के त्योहारों पर बिकने वाले मिट्टी के बर्तन, झाडू खेल सामग्री पन्खे, टोकरी, महिलाओं द्वारा खरीदी जाने वाली पूजन सामग्री मिट्टी और चीनी के कडुवे तरह–तरह के अनाज ही यहां के रोजगार के साधन है, जिससे कुछ आमदनी होने पर पूरे साल किसी तरीके से काम चलाते हैं

बुन्देलखण्ड में प्रचलित पर्वत उत्सव व्रत पूजन और अनुष्ठान बुन्देलखण्ड में लगभग 90 – 100 पर्व, उत्सव पूजन, अनुष्ठान व व्रत आदि होते हैं जिसमें निम्न मुख्य है।

<u>1 गणगौर /गनगौर</u>

यह राजस्थान में मनाए जाने वाले गनगौर से पूर्णतया भिन्न है। यह चैत्र शुक्ल तृतीया को गौरा देवी /पार्वती का व्रत है। इसे सुहागिन स्त्रियां रखती हैं। गौरा को चढ़ाने के लिए प्रसाद के रूप में बेसन व आटा में गुड़ मिलाकर, गनगौरा / जेवर बनाते हैं। इन्हें पुरुषों को देने का पूर्ण रूप से निषेध है। बोला जाता है।:–

गौरा के गन गौरा, पुरुषों को ना देहो एकउ कौरा।

जैसा कि सामान्य नियम है, किसी भी व्रत त्यौहार में एक कहानी अवश्य होती है। गनगौरा के पूजन में कहानी बोली जाती है।

गणगौर की पूजा चैत्र माह की शुक्ल पक्ष की तृतीया/तीज को होता है। व्रत में सुहागन स्त्रियां दिन भर उपवास में रहती है। शाम को पार्वती का पूजन किया जाता है। स्त्रियां बेशक बेसन/ चने की दाल का आटा के आभूषण बनाती हैं और पहनती भी हैं। बेसन के ही नैवैद्य बनाती हैं और गणगौर बनाती है। गणगौर की बनावट कान की माला के तरह की होती है। इसका प्रसाद पुरुषों को वितरित नहीं किया जाता। केवल स्त्रियों में ही बांट लिया जाता है। सौभाग्य की कामना करने वाली हर स्त्री इस व्रत को बुन्देलखण्ड की धरती पर अनन्त काल से करती आ रही है। एक कहावत है

गणगौर के गणगौरा, पुरुषों खां ना देउ एकउ कौरा।
जिसका अर्थ है पुरुषों को खाने के लिए एक भी कौर नहीं देंगे।

<u>2 चैती पूनों</u>

चैत्र मास की शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को बुन्देली में ''पजन के पूने'' या ''पजनू के पूने'' कहते हैं।
कई स्थानों पर यह पूजा बैशाख कृष्ण पक्ष के अष्टमी को होती है। इसको मटका पूजन भी कहते हैं।
पजन शब्द सम्भवतः पवन का अपभ्रंश है अर्थात पवन पुत्र हनुमान के लिये प्रयोग किया गया है। यह माँ व पुत्र का स्नेहपर्व होता है। प्रत्येक माता अपने पुत्र की दीर्घायु एवम् स्वास्थ्य की कामना करती है। इसी उद्देश्य से चैती पूनों का व्रत रखा जाता है। एक प्रकार से यह नई उपज आने का उत्सव भी है। चैत में नई फसल के अन्न से बने पकवान मटकी में भरकर पूजा की जाती है। कुछ मान्यताओं के अनुसार हनुमान जी का जन्म दिवस चैत्र पूर्णिमा को माना जाता है।

एक पांच या सात नई मटकियों को धोकर चूने से पोतकर उस पर हल्दी तथा इच्छानुसार रंगों के प्रयोग से चित्रण करते हैं। चित्रण में माँ तथा पुत्र की प्रतीकात्मक रचना की जाती है। चित्रण स्त्री की योग्यता पर निर्भर होता है। वह मटकी को शुभ चिन्हो तथा फूल पत्ती के अलन्करण से सजा देती है। पूजन के समय आँगन में गोबर से लीपकर उस पर आटे से चौक पूर कर उस पर मटकी स्थापित की जाती है। मटकी में घी के भुने आटे, शक्कर तथा मेवा मिश्रित पौष्टिक लड्डू भरे जाते हैं साथ में सेव, पपड़ी, खुरमे आदि भी भर देते हैं। मटकी पर मलिया ढँक कर

पूजन करते हैं। समस्त पूजन सामग्री से विधिवत पूजन किया जाता है। पजनूं की कहानी भी कही जाती है। कथा के बाद माँ पुत्र को टीका करती है। पुत्र मटकी के लड्डू निकाल कर माँ के आँचल में डालता है, और माँ प्रेम पूर्वक पुत्र को लड्डू खिलाती है।

माँ यह कामना करती है कि चैत्र पूर्णिमा की मटकी के स्वास्थ्यवर्धक पकवान और लड्डू खाकर पुत्र बलशाली बने। पजन के पूने के लिये यह भी कहा जाता है–

पजन के लड्डू पजनई खाइय दौड़–दौड़ मटकियन नौं जांय।

अर्थात पजन के लड्डू पुत्र ही खाते हैं। वे लड्डू खाने के लिये मटकी के पास बार–बार जाते हैं। सम्बन्धित कहानी इस प्रकार है– एक राजा के दो रानी थी। राजा निःसन्तान थे। छोटी रानी गर्भवती हुई, तब राजा का प्रेम उनके प्रति बढ़ गया। इससे बड़ी रानी ईर्ष्या करने लगी। पुत्र जन्म पर राजा के न रहने पर बड़ी रानी ने पुत्र को घूरे पर फिकवा दिया और राज्य में घोषणा करा दी कि रानी ने पत्थर को जन्म दिया है। कुम्हार दम्पत्ति को वह बच्चा मिला। उन्होंने उसे पाल लिया और उसका नाम ''पजन कुमार'' रखा। घटना के सात वर्ष बाद रानियाँ स्नान हेतु नदी पर गई, वहाँ पजन कुमार मिट्टी के घोड़े को पानी पिला रहा था। बड़ी रानी ने मजाक उड़ाते हुए कहा, ''मिट्टी का घोड़ा भी कभी पानी पीता है?'' पजन ने उत्तर दिया, "जब रानी पत्थर को जन्म दे सकती है तो मिट्टी का घोड़ा पानी क्यों नहीं पी सकता?" छोटी रानी उत्तर से आशंकित हुई और सत्यता जानने हेतु कुम्हार को बुलाया तो उसने पजन का घूरे पर मिलने की घटना बताई। सत्यता की पुष्टि हेतु पजन की परीक्षा ली गई उसे गर्म आंवा (भट्टी) में बन्द किया गया जिससे वह जीवित निकल आया। छोटी रानी को कच्चे सूत के झूले पर झुलाया गया, झूला नहीं टूटा। राज्य में हर्ष की लहर छा गई। पजन राजकुमार बना। बड़ी रानी को दण्ड स्वरूप हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया गया।

इस कथा का यही सन्देश है कि मनुष्य की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति उसके जीवन के समस्त सुखों का नाश कर देती है। दुर्बुद्धि की जननी ईर्ष्या है।

<u>3 व 4 दौज</u>

इसे भाई–दौज या भैया–दूज के नाम से जाना जाता है। चैत्र मास के कृष्णपक्ष द्वितीया को तथा कार्तिक मास में शुक्ल पक्ष की द्वितीया को ''दौज'' गोबर से बनाई जातीं है। यह घर के मुख्य द्वार के दोनो ओर बनाई जाती है। सर्वप्रथम गोबर की चपटी गोलाकार आकृति बनाई जाती है, इसे धनात्मक चिन्ह द्वारा चार भागों में विभाजित कर दिया जाता है। बीच में जहाँ दोनो रेखायें मिलती हैं, वहाँ देवी आकृति बनाते हैं, जिसे ''दौज माई'' कहते हैं। विभाजक रेखा की समाप्ति पर कुण्ड बनाये जाते हैं। विभाजक रेखाओं के बीच खाली स्थान पर समृद्ध गाँव का दृश्य योग्यता एवम् कल्पना के आधार पर बनाते हैं। जिसमें दूध बिलोती देवरानी – जेठानी, भोजन बनाने तथा धान कूटने आदि का दृश्य, ग्वाले, पशु, पर्वत आदि बनाये जाते हैं।

पूजन करते समय चारों ''कूड़ों'' में दूध भरकर ढक्कन से बन्द कर देते है। यह चारों दिशाओं की समृद्धि प्रदर्शित करते हैं। मध्य में निर्मित ''दौज माई'' की पूजा करने के बाद बहनें अपने भाइयों को टीका करती हैं। इस पूजन का मुख्य उद्देश्य बहन द्वारा भाई की रक्षा व दीर्घायु होने की मंगल कामना करना होता है। दौज पूजन के बाद बहनें द्वार पर रूई की बनी ''आसें'' भी लगाती हैं यह भाई की दीर्घायु कामना या उम्र जोड़ना कहलाती है। इसके लिये रूई की एक लम्बी माला बनाई जाती है जिसे हल्दी और पानी की सहायता से बीच–बीच में दबाते चले जाते हैं। इस कारण रूई के सफेद गुरिया(मोती) जैसे दिखने लगते हैं। भटकटैया के कांटेदार पत्तों को मूसल से कुचल कर बहनें कहती हैं–

जो कोऊ बुरई नजर से भैया को देखे, ऊ की आँखें फूटैं।
जो कोऊ गारी देवै, ऊ कौ मौ बरे, (मुंह जले)
ऊ कौ मौ दौजे–दौजे।

सरल शब्दों में बहन द्वारा भाई के निष्कंटक जीवन की यह मंगल कामना होती है। ऐसा लोक–विश्वास है कि दौज के दिन भाई को अपनी बहन के हाथों का बना भोजन अवश्य करना चाहिये, इससे भाई का मंगल होता है। जो

भाई बहन के यहाँ भोजन नहीं करता है उसके वर्ष भर के सुकृत नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार जो बहन दौज का पूजन नहीं करती वह सात जन्म तक भाई के बिना रह जाती है। यह बहन द्वारा भाई का रक्षा कवच होता है।

दीपावली के बाद आने वाली दौज को यम–द्वितीया के नाम से भी जाना जाता है। सम्बन्धित कथानुसार– भगवान सूर्य की पुत्री यमुना और यमराज भाई बहन है। यमराज यमुना के यहाँ कभी नहीं जाते थे। यमुना उन्हें हमेशा बुलाती थीं। एक बार बहुत आग्रह के बाद यमराज कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की द्वितीया पर यमुना के घर गये। यमुना ने स्वागत कर उनका टीका किया और प्रेम पूर्वक भोजन कराया। बहन का प्रेम देखकर यमराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बहन के मान्गने पर वचन दिया कि जो भाई इस दिन अपनी बहन के घर जायेगा और टीका कराके भोजन करेगा, मैं उसे मृत्यु से मुक्त कर दूंगा। इसी कथा के कारण समाज में भाई दूज मनाने की परम्परा सदियों से चली आ रही है।

बुन्देलखण्ड के कुछ भागों में उपरोक्त कथा को थोड़ा सा परिवर्तित करके भी कहा जाता है कि यमराज को क्षयरोग हो गया तो वे अपनी बहन यमुना के पास गये। जब बहन ने भोजन कराया तब उनका रोग ठीक हुआ। इस कथा सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि यमुना नदी बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्रवाहित होती है।

बुन्देलखण्ड लोक जीवन में दौज की एक कहानी भी बहु–प्रचलित है, जो कुछ इस प्रकार है– एक भाई अपनी बहन के यहाँ दूज का टीका करवाने गया। बहन ने आदर पूर्वक भाई को भोजन कराया, टीका कर लड्डू देकर विदा किया। भाई के जाने के बाद उसने एक लड्डू कुत्ते को दिया। लड्डू खाकर कुत्ता मर गया। बहिन ने भाग कर भाई का पीछा किया। उसने देखा मार्ग में एक पेड़ के नीचे भाई सो रहा है और लड्डू की पोटली पेड़ पर लटकी है। बहन वहीं बैठकर भाई के जागने की प्रतीक्षा करने लगी। इसी बीच उसने पेड़ पर बैठे पक्षियों की बात सुनी। वे कह रहे थे कि यह लड़का अपनी बहन का बहुत लाडला है, लेकिन विवाह के समय आने वाली आपदाओं से इसकी मृत्यु हो जायेगी। दूसरे पक्षी ने बचने का उपाय पूछा, तब पहले पक्षी ने कहा– यदि लड़के की आपदा को, कोई बिना कारण बताये नष्ट करता जाये तो यह बच सकता है। विपत्तियाँ कौन–कौन सी होंगी और बचाव क्या है, यह सब बहन ने सुन लिया। यह सुनकर वह बहुत दुखी हुईं। उसने मन ही मन उपाय सोचा और बावरी होने का अभिनय करने लगी। अपने भाई को गालियाँ देने लगी। उसी के साथ–साथ घर तक गई। जब भाई का विवाह होने वाला था, तब वह बारात में "बिजुरिया खांडौ" (बुन्देलखण्ड में प्रचलित तेज धारदार तलवार/शस्त्र) लेकर साथ गई। नदी पार करते समय बहन ने मगरमच्छ को मारकर भाई की जान बचाई। विवाह के समय सभी नेग–चार में बहन पहले जाकर खड़ी हो जाती थी, जिससे टीके के समय मुख्य द्वार का गिरना, फेरों के समय मंडप का गिरना इत्यादि आपदायें टल गई। जब बारात घर लौट कर आई तब बहन ने सुहागरात को भाई–भाभी के साथ सोने की जिद की। भाई स्नेहवश मान गया। रात्रि में एक भयंकर काला नाग भाई को डसने आया। बहन ने उसे बिजुरिया खांडौ से मार दिया। प्रातःकाल बहन सामान्य व्यवहार करने लगी। सबने कारण पूछा, तब बहन ने पक्षियों की बातें बता दी। सभी ने बहन के प्रेम की प्रशंसा की।

इस दिन कायस्थ परिवारों में चित्रगुप्त की पूजा का विधान भी है। कलम दवात को भी दौज पूजा में रखा जाता है।

<u>5 शीतला अष्टमी</u>

यह शीतला देवी की पूजा का पर्व है। यह उत्सव चैत्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी को बनाते हैं। बासेड़ी आठें भी कहते हैं। इस पर्व पर शीतला माता की पूजा कर उन्हें शीतल, ठंडा और बासी भोजन प्रसाद में चढ़ाते हैं। एक दिन पूर्व भोजन बनाकर रात भर रख दिया जाता है और अगले दिन प्रसाद में चढ़ाते हैं। यही भोजन सभी सदस्य ग्रहण करते हैं। यह भोजन जिसे बासेरा कहते है, एक रात्रि पूर्व सप्तमी को ही बना लिया जाता है, अष्टमी को चढ़ता है। चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन घर में चूल्हा नहीं जलाया जाता या आग का उपयोग नहीं किया जाता है। घर में चूल्हा नहीं जलाया जाता है। अतिथि को यही प्रसाद ग्रहण करना होता है।

<u>6 जगन्नाथ पूजा</u>

चैत्र/चैत माह के अन्तिम सोमवार को, जगन्नाथ जी की बड़ी पूजा की जाती है। इस पूजा का क्रम चैत्र के प्रथम सोमवार से प्रारम्भ होकर चैत्र के अन्तिम सोमवार तक चलता है, और अन्तिम सोमवार को पूरा होता है। यह पूजा उन परिवारों में ही होती है, जिस परिवार का कोई सदस्य जगन्नाथ पुरी (उड़ीसा) हो आया हो और बेंत ले कर आया हो।

पूजन स्थल पर आटे का चौक पूर कर, लकड़ी का पटरा/ पाटा रखते हैं। पाटा पर जगन्नाथ जी की बेंत रखकर उनकी पूजा की जाती है। बेंतें रखकर कहावत के अनुसार 56 प्रकार के व्यन्जनों का प्रसाद घर में बनाकर चढ़ाया जाता है। 56 व्यन्जन मतलब 8प्रहर प्रति दिन और 7 दिन तक। किसी भी प्रहर में भोजन का पुनर्वालोकन ना होना अर्थात 56 प्रहरों में 56 प्रकार के भोजन और यह सभी भोजन अलग–अलग होते हैं। 7 दिन तक करना थोड़ा सा परेशानी का कारण हो सकता है, अतः एक बार में ही 56 प्रकार के भोजन या या सम्पन्नता के अनुसार जितने प्रकार के भोजन हो सकते हैं, घर में बनाकर चढ़ाया जाता है और अन्य प्रथाओं की तरह यहां भी जगन्नाथ जी की कहानी कही जाती है।

8 अक्षय तृतीया या अक्ती /अक्ति/अकती

यह तिथि बसन्त ऋतु के अन्त और ग्रीष्म ऋतु का प्रारम्भ का दिन भी है इसलिए अक्षय तृतीया के दिन जल से भरे घड़े, कुल्हड, सकोरे, पन्खे, खडाऊँ, छाता, चावल, नमक, घी, खरबूजा, ककड़ी, शक्कर, साग, इमली, सत्तू आदि गर्मी में लाभकारी वस्तुओं का दान पुण्यकारी माना गया है। इस दान के पीछे यह लोक विश्वास है कि इस दिन जिन–जिन वस्तुओं का दान किया जाएगा, वे समस्त वस्तुएँ स्वर्ग व अगले जन्म में प्राप्त होगी। इस दिन लक्ष्मी नारायण की पूजा श्वेत कमल अथवा श्वेत पाटल (गुलाब) व पीले पाटल से करनी चाहिये।

सर्वत्र शुक्ल पुष्पाणि प्रशस्तानि सदार्चने।
दानकाले च सर्वत्र मन्त्र मेत मुदीरयेत् ।।

बुन्देलखण्ड में इस त्यौहार की अपनी अलग ही रौनक होती है। इसमें लड़कियाँ गुड्डे–गुड़ियों का खेल खेलती हैं। लड़के आज के दिन से पतंग उड़ाते हैं। घैलों –छोटे घड़ों के ऊपर पूड़ियाँ, पकौड़ी, सत्तू, गुड़ व कच्ची अमियाँ रखकर दान दी जाती हैं। शाम के समय लड़कियाँ अकती गीत गाती हुई जाती हैं फिर लौटकर सोन बाँटती हैं। (सोन में भीगी हुई चने की दाल व बरगद के पत्ते) ननद भाभी आपस में मनो–विनोद कर उनके पति के नाम पूछती हैं।

बैशाख शुक्ल तृतीया पर भूमि की लिपाई कर चौक पूरी जाती है। मध्य में कलश तथा चार छोटी मटकियाँ रखते हैं। जिनमें क्रमशः आषाढ़, सावन, भादों एवम् क्वार महीनों के नाम भी लिखे जाते हैं। उनका सम्बन्ध वर्षा की स्थिति से होता है। मटकियों के चने के दाने भरते है व प्रत्येक मटकी के चनों को भिगोते हैं। उन पर ढक्कन लगाकर छोड़ दिया जाता है। मौसमी फल जैसे आम, ककड़ी तथा गर्मी के मौसम के पन्खा, सत्तू आदि भी पूजा में रखे जाते हैं। पूजन के दूसरे दिन प्रत्येक मटकी से भीगे चने निकाल कर देखते है। जन–मानस में ऐसा विश्वास है कि जिस इंगित मास की मटकी के चने फूलेंगे उस मास अच्छी वर्षा तथा जिस मटकी के चने नहीं फूले उस मास सूखा या निम्न वर्षा स्थिति रहेगी। यह लोक–विश्वास पर आधारित वर्षा अनुमान है जो कृषि सम्बन्धी कार्यों में सहायक माना जाता है। यह देवताओं द्वारा बताई गई वर्षा की स्थिति समझी जाती है। इस दिन कन्यायें कपड़े से बने पुतरा–पुतरियों(गुडिया गुड्डा) का विवाह भी करती हैं।

पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार इस दिन जो भी शुभ कार्य किये जाते हैं, उनका अक्षय फल मिलता है। इसी कारण इसे अक्षय तृतीया कहा जाता है। वैसे तो सभी बारह महीनों की शुक्ल पक्षीय तृतीया शुभ होती है, किन्तु बैशाख माह की तिथि स्वयंसिद्ध मुहूर्तो में मानी गई है।

मान्यता है कि इस दिन बिना कोई पंचांग देखे कोई भी शुभ व मान्गलिक कार्य जैसे विवाह गृह–प्रवेश वस्त्र–आभूषणों की खरीददारी या घर भूखण्ड वाहन आदि की खरीददारी से सम्बन्धित कार्य, नवीन वस्त्र, आभूषण आदि धारण करने और नई संस्था, समाज आदि की स्थापना या उद्घाटन का कार्य किए जा सकते हैं।

आज के दिन मनुष्य अपने या स्वजनों द्वारा किए गए जाने–अनजाने अपराधों की सच्चे मन से ईश्वर से क्षमा प्रार्थना करे तो भगवान उसके अपराधों को क्षमा कर देते हैं और उसे सद्गुण प्रदान करते हैं

इसी प्रकार हरायतें भी अक्ती के आसपास के दिन कृषि पर्व के रूप में मनाया जाता है। यह पृथ्वी तत्वों का आवाहन होता है। बैशाख बदी अमावस्या के बाद सूर्य की स्थिति व शुभ नक्षत्रों के आधार पर किसान आगामी वर्षा का लाभ उठाने हेतु खेतों की भूमि का पूजन करते हैं और शगुन स्वरूप उसी दिन हल भी चला देते हैं। खेतों में भूमि पर चौक पूरकर उस पर अनाज से भरा ''घैला'' (छोटी मटकी) रखते है। उस पर ज्वार के दाने तथा मिट्टी का गोला बनाकर उसमें जरिया–छेवला की टहनी लगाकर रखते हैं। पन्डित पूजा कर के मंत्रों से दसों दिशाओं आकाश–पृथ्वी

का पूजन कराते हैं। हल, बैल तथा किसान के हाथों पर स्वास्तिक चिन्ह हल्दी से बनाया जाता है। यह जुताई का प्रथम दिन होता है। उपरोक्त दोनो अवसरों का सीधा सम्बन्ध भूमि चित्रण से नहीं है, किन्तु लोक चित्रकला के सम्बन्ध में उन अवसरों का संक्षिप्त वर्णन करना उचित प्रतीत है जिनमें भूमि चित्रण करना अनिवार्य होता है, साथ ही हमारे लोक जीवन में उनका महत्व भी होता है।

यह तिथि बसन्त ऋतु के अन्त और ग्रीष्म ऋतु का प्रारम्भ का दिन भी है। इसलिए अक्षय तृतीया के दिन जल से भरे घड़े, कुल्हड, सकोरे, पन्खे, खडाऊँ, छाता, चावल, नमक, घी, खरबूजा, ककड़ी, शक्कर, साग, इमली, सत्तू आदि गर्मी में लाभकारी वस्तुओं का दान पुण्यकारी माना गया है। इस दान के पीछे यह लोक विश्वास है कि इस दिन जिन–जिन वस्तुओं का दान किया जाएगा, वे समस्त वस्तुएँ स्वर्ग व अगले जन्म में प्राप्त होगी। इस दिन लक्ष्मी नारायण की पूजा श्वेत कमल अथवा श्वेत पाटल (गुलाब) व पीले पाटल से करनी चाहिये।

अनेक बालिकाओं से सम्बन्धित त्योहारों में उसे मनाने की विधियां अलग–अलग भी हैं जैसे

अक्ति को मनाने की रीति विधि

प्रीति अतिथि त्यौहार में कुंवारी लड़कियां गुड्डे गुड़िया का विवाह करती हैं मिट्टी से बने हुए गुड्डे गुड़ियों को (मोर) लगाई जाती है दूल्हा दुल्हन के कपड़े भी पहनाई जाते हैं। फूले हुए देवल एक मिट्टी के गमले में भरकर देवताओं में चढ़ाए जाते हैं इस अवसर पर लड़कियां सामूहिक रूप से यह गीत गाती

अक्ति खेलन कैसे जाऊंरी, वर तेरे मेले लिवउआ।।
मेले लिवउआ, मोरे मेले चलउआ।
पेले लिवउआ मोरे नाउ कक्का आए,
नाउ संग नईं जाऊंगी, वर तेरे मेले लिवउआ।।
दूजे लिवउआ मोरे ससुरा जी आए,
ससुरा के संग नईं जाऊंगी, वर तेरे मेले लिवउआ।।
तीजे लिवउआ मोरे जेठा जी आए।
जेठा के संग नईं जाऊंगी, वर तेरे मेले लिवउआ।।
चौथे लिवउआ मोरे देवराजू आये।
देवरा के संग नईं जाऊंगी, वर तेरे मेले लिवउआ।।
पांचवे लिवउआ मोरे राजा जू आए।
राजा संग डोली में जाऊंगी। वर तेरे मेले लिवउआ।।

सर्वरोगहारी निम्ब (नीम) सप्तमी व्रत

निम्ब सप्तमी, जिसे नीम सप्तमी के नाम से भी जाना जाता है, एक हिन्दू त्योहार है जो बैशाख मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी (आमतौर पर अप्रैल में) को मनाया जाता है, इस सप्तमी को निम्ब सप्तमी कहते हैं। इसके दौरान पवित्र नीम के पेड़ (अजादिराच्टा इंडिका) की पूजा की जाती है। यह औषधीय और आध्यात्मिक महत्व से जुड़ा हुआ है। लोग नीम के पत्ते लेते हैं और विशिष्ट अनुष्ठानों के साथ इस दिन को मनाते हैं।

इस तिथि को निम्ब (नीम)–पत्र का सेवन किया जाता है। यह सप्तमी सभी तरह के व्याधियों को हरने वाली है। इस दिन हाथ में शाङ्र्गधनुष, शंख, चक्र और गदा धारण किय हुय भगवान सूर्य का ध्यान कर उनके पूजा की जाती है।

निम्ब सप्तमी के मुख्य पहलू

नीम का पेड़ हिन्दू संस्कृति में प्रतीकात्मक(प्रतीकवाद) महत्व रखता है, जो स्वास्थ्य, सुरक्षा और शुद्धि का प्रतिनिधित्व करता है। यह दिन नीम के पेड़ को समर्पित है, जो अपने विभिन्न औषधीय और कीटनाशक गुणों के लिए जाना जाता है। लोग अक्सर नीम के पत्तों या इसके अर्क का सेवन करते हैं, यह मानते हुए कि वे विभिन्न बीमारियों और विकारों में मदद कर सकते हैं। नीम के अनेक स्वास्थ्य लाभ हैं, जिनमें कीटनाशक और रोगाणुरोधी गुण भी शामिल हैं।

आध्यात्मिक महत्त्व

कुछ लोग इस दिन विशिष्ट अनुष्ठानों के साथ मनाते हैं, जैसे मंत्रों का जाप करना या नीम के पेड़ की पूजा करना।

9 आस माई

आसमाई की पूजा बैशाख, आषाढ़ और माघ माह के किसी रविवार को कर सकते है। मुख्यरुप से आस–माई की पूजा बैशाख मास में कृष्ण पक्ष की द्वितीया के दिन की जाती है। यह व्रत पुत्रवती स्त्रियां करती हैं। व्रत का उद्देश्य है कि पुत्र को सत्कर्म की प्रेरणा मिले तथा वह दीर्घायु हो व समस्त सुखों को भोगे। जीवन में कर्म की महत्ता है। सत्कर्म ही चरित्र का निर्माण करते हैं। व्रत में पूजा के साथ कहानी भी कही जाती है, जिसका सन्देश यह है कि कर्मठ व्यक्ति विपरीत परिस्थितियों में भूख–प्यास व नींद का परित्याग तो कर दे, किन्तु उसे सफलता की आशा नहीं छोड़नी चाहिए।

अन्य जगहों पर यह भी प्रचलित है।

यह पर्व बैशाख के दौज/द्वितीय को मनाया जाता है। इस पर्व को कार्य सिद्धि के लिए किया जाता है। इस पर्व के दिन चौक पूर कर पाटा रखकर पान पर सफेद चंदन से एक पुतली बनाई जाती है। फिर चौक बनाकर कलश को स्थापित करते हैं। उसी के पास आसमाई को स्थापित करते हैं। इसी पर चार गान्ठ वाली चार कौड़िया रखी जाती हैं। इसी की पूजा होती है। नैवैद्य में 7 आसे बनाई जाती है जिन्हें व्रत करने वाली स्त्रियां खाती है। घर का सबसे छोटा बच्चा कौड़ियों को पटे पर पारता है। आसमाई की पूजा होती है। यह कौडिया पूजन के पश्चात अपने पास रखी जाती हैं जिनकी प्रत्येक वर्ष पूजा होती है। पूजन के बाद पन्डित 12 पोटियों वाला मान्गलिक सूत्र व्रत करने वाली महिला को देता है। इस मान्गलिक सूत्र को धारण करके ही भोग लगाना चाहिए।

या

आस माई का चित्रान्कन पान के पत्ते पर चंदन व हल्दी से किया जाता है। आस–माई के साथ भूख–माई, प्यास–माई तथा नींद–माई का चित्रण भी करते हैं। पूजा में चार कौड़ियाँ भी रखी जाती हैं जो सौभाग्य का प्रतीक मानी जातीं हैं। चित्रित पान को पटे पर रखते हैं। आँगन में गोबर से लीपकर आटे से कलात्मक चौक बनाई जाती है। चित्रित पान रखकर जल से भरा कलश भी रखते हैं। चित्रित पान यह प्रगट करता है कि मानव जीवन हरे पान के पत्ते के समान है जो विपरीत स्थिति आने पर मुरझा जाता है किन्तु हल्दी पिसने के बाद भी अपने रंग व गुण नहीं त्यागती। हल्दी से चित्रित पुतरियाँ प्रत्येक परिस्थिति में कर्म करने की प्रेरणा देती हैं। व्रत के पारायण हेतु सात आसें(आटे व गुड़ से बने पुआ जिनके किनारे गोंठ दिये जाते हैं) बनाई जाती है। आसें पूजा में रखी जाती है। भोग लगाकर व्रतधारिणी स्त्री आसें खाकर कलश का जल पीती है। पूजन में सन्देशात्मक कहानी भी कही जाती है–

एक राजा था। उनका पुत्र अत्यधिक प्रेम के कारण उपद्रवी हो गया था। राह चलते लोगों को परेशान करता, पनिहारिनों की मटकी फोड़ता था। राजा के आदेश पर पनिहारिन पीतल व ताँबे के बर्तनों में जल भरने लगीं, तब राजकुमार शीशे व लोहे के गुरों से कलश फोड़ने लगा। नित्य आने वाली शिकायतों से राजा परेशान हो गया उसने राजकुमार को देश निकाला दे दिया। राजकुमार दुःखी मन से घोड़े पर बैठ कर वन की ओर चला। वन में उसे चार वृद्ध स्त्रियाँ मिलीं। राजकुमार चाबुक घुमाता जा रहा था, अचानक चाबुक जमीन पर गिर गया उसे उठाने के लिये वह झुका तो वृद्धाओं ने समझा कि उन्हें अभिवादन किया है। उन्होंने अपना परिचय राजकुमार को भूख–माई, प्यास–माई, नींद–माई तथा आस–माई के रूप में दिया और अपनी विशेषतायें बताई। राजकुमार कुछ सोचकर बोला, मैंने आस–माई को प्रणाम किया है। आस–माई ने प्रसन्न होकर उसे चार कौड़ियाँ देकर आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी सर्वत्र विजय हो। राजकुमार दूसरे देश पहुँचा। वहाँ का राजा तथा प्रजा सभी द्यूत–विद्या में निपुण थे। राजकुमार ने जुए में क्रमशः धोबी, कुम्हार, सेनापति तथा मंत्री को हराया। अन्त में राजा को पराजित कर राजपाट जीत लिया और राजकुमारी से विवाह किया। अपनी पत्नी के कहने पर तथा आस–माई की कृपा से राजकुमार वापस अपने माता पिता के पास लौट आया। राजकुमारी बहुत ही सुशील और सदाचारिणी थी। उस महल में उसकी सास–ननद के न होने से वह कपड़े की गुड़ियों द्वारा सास ननद की कल्पना करके उनके चरणों छूकर आशीर्वाद प्राप्त करने लगी। एक दिन उसने राजकुमार को अपनी सास–ननद की सेवा करने की इच्छा के विषय में बताया तो वह राजकुमार सेना को साथ लेकर अपने घर को चल दिया। अपने पिता के राज्य में पहुँचने पर उसने देखा कि उसके माँ–बाप रो–रोकर अंधे हो गये हैं। पुत्र के आने

का समाचार पाकर राजा रानी बहुत प्रसन्न हुए। महल में प्रवेश करने के बाद बहू ने अपनी सास के चरण स्पर्श किये। सास के आशीर्वाद से उसने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। आसमाई की कृपा से राजा–रानी के नेत्रों की रोशनी वापस आ गई। और उनके समस्त कष्ट भी दूर हो गये।

10 हरायतें लेना

यह बैशाख आषाढ़ माह के कृष्ण पक्ष की अमावस्या का मनाया जाने वाला पर्व है। किसानो के यन्त्रो, खेती की तैयारी की पूजा का पर्व है। यह किसानों की पूजा का त्यौहार है। किसान कृषि कार्य प्रारम्भ करने के लिए चौक पूर कर गुड़ तथा सत्तू से भोग लगाते हैं। खेती प्रारम्भ करने के लिए खेती संबन्धी आवश्यक उपकरणों व जानवरों, भूमि, बैल, हल, कृषि में उपयोग आने वाले औजार आदि को चलाने वाले व्यक्ति ''हरवारे'' को टीका किया जाता है, पूजा जाता है। इसके पश्चात कृषि कार्य प्रारम्भ होता है।

11 वर/वट बरसातें/ बरा बरसात

यह पर्व ज्येष्ठ माह की–कृष्ण पक्ष अमावस्या पर वर/वट बरसातें /वट सावित्री व्रत किया पड़ता है। इसे वट अमावस्या भी कहते हैं। ये व्रत अखण्ड सौभाग्य की कामना के लिए किया जाता है इसलिए व्रत की पूजा सुहागन स्त्रियां ही करती है। स्त्रियां अपने पति व पुत्र की आरोग्य अखण्ड सौभाग्य की कामना भी करती है। स्त्रियां वट वृक्ष के समीप जाकर वट वृक्ष की पूरी विधि विधान से पूजा करती है। वट के तूल / जड़ में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु, ऊपर शिव और समग्र में सावित्री है, ऐसा माना जाता है। महिलाएं सती सावित्री की कहानी कहकर, नैवेद्य, बरगदा / बेसन और गुड़ से मिश्रित आटा चढाती है, प्रसाद में शरबत वह बरगदा को ग्रहण कर, व्रत का समापन करती है। सती सावित्री के सम्मान में यह व्रत किया जाता है।

पौराणिक मान्यता के अनुसार देवी सावित्री ने पति सत्यवान के प्राणों की रक्षा के लिए लगातार 3 दिन व्रत रखा था। यही वजह है कि कुछ जगह वट सावित्री व्रत ज्येष्ठ महीने की पूर्णिमा या अमावस्या के 3 दिन पहले से ही शुरू हो जाता है। ये व्रत त्रयोदशी तिथि से शुरू होता है और अमावस्या के दिन बरगद के पेड़ की पूजा और परिक्रमा कर सौभाग्य की कामना की जाती है।

नारद पुराण में इसे ब्रह्म सावित्री व्रत भी कहा गया है।

इस पावन दिन सुबह जल्दी उठकर स्नान आदि से निवृत्त हो घर के मन्दिर में दीप प्रज्वलित करते है। इस पावन दिन वट/बरगद वृक्ष की पूजा का विशेष महत्व होता है। वट वृक्ष के नीचे सावित्री और सत्यवान की मूर्ति को रख कर मूर्ति और वृक्ष पर जल अर्पित करती है। सभी पूजन सामग्री अर्पित कर पूजा सम्पन्न करती है।

वट सावित्री व्रत सामग्री में विस्तृत पूजा में निम्न सामग्री का प्रयोग करते है।
दो बांस की टोकरी, सावित्री और सत्यवान की मूर्ति, बांस का पन्खा (बियन), कच्चा सूत, लाल रंग का कलावा, मिट्टी का जल भरा घड़ा, अगरबत्ती, गंगाजल, बताशे, धूप, सवा मीटर कपड़ा, फल, सात प्रकार के अनाज, फूल, मखाने का लावा, मिट्टी का दीपक, रोली, चावल, इत्र, पान, सिन्दूर, सुपारी, नारियलट, वट वृक्ष, भीगे काले चने, सुहाग का सामान, मिठाई, घर से बना मीठा पकवान
जो लोग पहली बार वट सावित्री व्रत कर रहे हैं, उनके लिए कपड़े का बना वर वधू का जोड़ा (गुड्डा)

12 कुनघुसूं पूने

आषाढ़ मास की शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा ''गुरू पूर्णिमा'' के नाम से जानी जाती है। बुन्देलखण्ड में इसका स्वरूप भिन्न होता है। यहाँ कुलवधू या गृह वधू की पूजा इसी दिन की जाती है। स्त्री घर की शोभा है, मर्यादा है, सम्माननीय है, वंश–वृद्धि में सहायक है, उसका वधू रूप गरिमामय होता है जिसमें बड़ों के लिये आदर व छोटों के लिये प्यार होना चाहिए। अपने कुल की मर्यादा में रहकर समाज में मान–सम्मान प्राप्त करना ही कुलवधू का दायित्व है। इन सभी पारिवारिक भावनाओं को अपने में समाहित किये कुनघुसूं की पूजा की जाती है।

इस पूजा का भित्ति चित्रण घर की वरिष्ठ महिला द्वारा किया जाता है। नाम के अनुरूप कुनघुसूं का चित्रण कोने में किया जाता है। पूजागृह या रसोई के चारों कोने गोबर से लीपकर उस पर हल्दी से पुतरियां बनाई जाती हैं।

यह बहुयें कहलाती हैं। सम्भवतः यह कुल की देवी या उन बहुओं का प्रतीकात्मक चित्रण है जो पुराने समय से कुल मर्यादा और वंश वृद्धि में सहायक बनीं। यह भी कहा जाता है कि यह भविष्य की बहुयें हैं जो परम्परानुसार परिवार को संचालित कर उसे समाज में सम्माननीय स्थिति में रखेंगी।

भित्ति चित्रण के पश्चात इन प्रतीकात्मक बहुओं को घी गुड़ का भोग लगाकर विधिवत् पूजा की जाती है। वरिष्ठ महिला ऐसी प्रार्थना करती है कि "हे कुलवधू, तुम हमारे परिवार की लक्ष्मी बनकर धन–धान्य को परिपूरित कर, वंश बेल में वृद्धि करो और कुल की लाज, मान–मर्यादा तथा पारिवारिक सद्भाव बनाये रखो।" यह समस्त गुण यदि कुलवधू में हैं तो वह परिवार में सुख समृद्धि बनाये रखने और वृद्धि करने में सहायक होगी। प्रतिवर्ष यह पूजन परिवार की वधुओं को अपने दायित्वों तथा कर्तव्यों को स्मरण कराता है।

कुनघूसूं से सम्बन्धित एक पौराणिक कथा भी हैः– एक बार राजा दक्ष प्रजापति ने बहुत बड़ा यज्ञ किया। उसमें समस्त देवताओं को आमंत्रित किया, किन्तु अपने दामाद शंकर तथा पुत्री सती को आमंत्रित नहीं किया। जब सती को यज्ञ के बारे में ज्ञात हुआ तब वे यज्ञ में जाने की जिद करने लगीं। भगवान शंकर ने बहुत समझाया कि विवाह के बाद पितागृह पुत्री के लिये पराया हो जाता है। बिना निमन्त्रण के वहाँ नहीं जाना चाहिये, व्यर्थ ही अपमान होगा। किन्तु सती माता–पिता के प्रेम में वशीभूत हो अपनी मान–मर्यादा भूलकर यज्ञ में पहुँच गई। वहाँ सभी भगवानों के आसन थे किन्तु भगवान शंकर को स्थान नहीं दिया गया था और देवी सती का भी अपमान हुआ। क्रोधित हो सती ने हवन कुण्ड में कूदकर आत्मदाह कर लिया। भगवान शंकर ये घटना जान कर रौद्र रूप में आ गये। उन्होंने अपने वीरभद्र नामक गण को यज्ञ विध्वंस करने भेजा। वीरभद्र तथा अन्य गणों ने यज्ञ खण्डित कर उपस्थित देवताओं का अंग–भंग कर दिया। भगवान विष्णु ने शंकर जी से शान्त होने की तथा देवताओं को पुनर्रूप प्रदान करने की प्रार्थना की। शंकर जी ने प्रार्थना स्वीकार कर सबको क्षमा कर दिया किन्तु देवी सती को वे क्षमा न कर सके क्योंकि देवी सती ने पति की आज्ञा न मान अपनी मान मर्यादा भुलाकर स्वयम् अपना और अपने पति का अपमान होने दिया। देवी सती दस हजार वर्षो तक कोयल बनकर वन में रही। उसके पश्चात् राजा हिमवान की पुत्री पार्वती के रूप में जन्म लेकर उन्होंने कठिन तपस्या की, तब भगवान शिव उन्हें पति रूप में प्राप्त हुए।

इस कथा का तात्पर्य कुनघुसूं पूने के पूजन उद्देश्य से मिलता हुआ है। भारतीय संस्कृति में स्त्री को अपने पतिगृह के पारिवारिक नियमों का पालन करना चाहिये। समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है।

13 गुरु पूर्णिमा

आषाढ़ माह की शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को गुरु पूर्णिमा मनाई जाती है इसे गुरुपूनो के नाम से भी जानते हैं। इस महीने में पूर्णिमा के पर्व को मनाने का महत्व है। गुरु पूर्णिमा के अवसर पर शिष्य अपने गुरुजनों का पूजन कर उन्हें श्रद्धा सुमन चढ़ाते हैं और सुखद स्वर्णिम भविष्य के लिए उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

14 असाढ़ी देवता

आषाढ़ माह ही पूरा पर्व है। इस महीने में सभी देवताओं देवी देवताओं को पूजने एवम् आषाढी कथा करने की परम्परा है। यह पूजन आषाढ़ के पूरे महीने तक चलता है। एकादशी को देवशयन के पश्चात यह पूजा पूरी हो जाती है। कालिका माता के सवैया में सवा किलो आटे की पूरी वह हलुवा बनाकर चढ़ाते हैं। जंगल या बाग बगीचों में जाकर वन देवताओं की पूजा करती हैं। स्त्रियां जंगल में आटा, दाल, सब्जी आदि ले जाती हैं और सब्जी के साथ गकरिया बनाती हैं। स्वादिष्ट भोजन का भोग लगाकर स्वयम् व परिवार के लोगों को स्नेहपूर्वक खिलाते हैं। इस प्रकार ग्रामीण अन्चल की महिलाओं की यह वार्षिक पिकनिक है कहा जा सकता है।

इसे देवशयनी एकादशी, हरिशयनी और पद्मनाभा एकादशी आदि नाम से भी जाना जाता है। अंग्रेजी ग्रेगोरियन कैलेंडर के अनुसार आषाढ़ी एकादशी जून या जुलाई के महीने में आती है।

15 सावन तीज

श्रावण माह की शुक्ल पक्ष की तृतीया को सावन तीज का त्यौहार बड़े उत्साह और उल्लास के साथ मनाया जाता है। भगवान को कपड़े, गहने, फूलों आदि से सुशोभित कर हस्त निर्मित सुन्दर झूलों में झुलाया जाता है। आज के दिन से ही ग्राम, कस्बे और शहरों में झूले डाल दिए जाते हैं और सभी लोग झूलना प्रारम्भ करते हैं। झूलने का यह

उत्सव अत्यधिक दर्शनीय एवम् महत्वपूर्ण है आज के दिन बुन्देलखण्ड क्षेत्र वृन्दावन जैसा प्रतीत होता है। ओरछा झान्सी और सागर में यह महोत्सव दर्शनीय है।

16 नाग पाँचे

श्रावण माह की शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन सांपों की पूजा की जाती है। नाग पंचमी के दिन महिलाएं बाम्बी पर जाकर, बाम्बी और सांपों का पूजन कर उन्हें दूध पिलाती है। साँपों के प्रति भय न रहे, इसीलिए शास्त्रों में नाग की पूजा का विधान है। घरों में ही नाग पंचमी का आलेखन कर उसमें पांच नाग की आलेखन कर /आकृतियां बनाकर पूजा करती हैं। यह पर्व सांपों को प्रसन्न करने तथा परिवार को उनसे क्षति न पहुंचे, इस कामना के साथ मनाया जाता है। साथ ही खेत में काम करने वाले कृषक इसे सुरक्षित रहें, यह भी एक कामना रहती है। इस दिन सपेरे घर–घर जाकर बीन बजाकर सभी को सांपों के दर्शन करवाते हैं और महिलाएं उन्हें पीने के लिए दूध देती है। लेखपाल, ग्राम चौकीदार और अन्य कागज पर बने हुए कागजों को लोगों के घर पर दरवाजे पर चिपका देते हैं और कुछ दान स्वीकार करते हैं।

श्रावण मास के शुक्लपक्ष की पंचमी नाग पंचमी के रूप मे जानी जाती हैं। इस तिथि मे नागों की पूजा करने का विधान है। वैसे तो नाग पंचमी पूरे देश मे मनाई जाती है किन्तु बुन्देलखण्ड मे नाग–पांचे का अलग महत्व और रूप होता है। इस तिथि पर नाग पूजा की निश्चित तिथि है। इसका उल्लेख भविष्य पुराण तथा प्रभास खण्ड मे मिलता है कि इस तिथि मे सर्प–पूजा करने से सर्पों का भय नहीं रह जाता है। ऐतिहासिक कथानुसार आस्तीक ऋषि के पिता आर्य तथा माता नाग जाति की थीं। इस कारण कई वर्षों तक उनमें आपस मे मित्रता रही। किन्तु नाग जाति के तक्षक के दुष्कर्मों के कारण नागों और आर्यों मे आपसी वैमनस्यता हो गई। जिससे मित्रता समाप्त होगई किन्तु आस्तीक ऋषि के प्रयासों से आर्यों के महोत्सव मे नाग पूजा को स्वीकार कर लिया गया। इस मित्रता को चिर स्थायी बनाने के लिये नाग पंचमी को त्यौहार के रूप मे परिणित कर दिया गया। हैहय वंश मे भी नाग पूजा का वर्णन प्राप्त होता है।

वर्तमान समय मे सपेरे घर–घर जाकर जीवित सर्पों के दर्शन करा देते है किन्तु पारम्परिक रूप से बुन्देलखण्ड के कई भागों मे नाग पंचमी पर भित्ति चित्रण करके पूजा की जाती है। यह भित्ति चित्रण पारिवारिक परम्परा के अनुसार ही किया जाता है। पंचमी तिथि पर पड़ने के कारण चित्रण को स्त्री रूप दिया जाता है। मुख, हाथ, पैर, भी चित्रित करते हैं। कही घर के बाहर की मुख्य भित्ति पर चित्रण किया जाता है और कहीं पूजा गृह की भित्ति पर सर्प चित्रण करते हैं। भित्ति चित्रण मे गेरू, कोयला या गोबर का प्रयोग करते हैं। चूने से पुती दीवार पर एक चौखाना बना कर उसमे पाँच या सात सर्प चित्रित किये जाते है। कभी कभी चौखाने के बाहर भी सर्प चित्रण होता है। इसका तात्पर्य यह होता है कि घर के अन्दर और बाहर के दोनो स्थान के सर्पों से हमारी रक्षा हो। इसी भावना से उन सर्प आकृतियों की पूजा की जाती है। खीर, दूध पंचामृत, कमल के फूलों से पूजा की जानी चाहिये, क्योकि यह नागों की प्रिय वस्तुयें हैं। धूप, दीप नैवेद्य के पश्चात् नागों के नाम स्मरण करें जो क्रमशः अनन्त, वासुकि, शेष, पद्म, कम्बल, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिया, तक्षक तथा पिंगल हैं। नागपंचमी की पूजा में इन सभी नागों के नाम का नैवेद्य चढ़ाना चाहिये। जीवित सर्पों को दूध पिलाना शुभ माना जाता है।

बुन्देलखण्ड का मुख्य व्यवसाय खेती है यहाँ नाग मित्र के रूप में माने जाते हैं। नाग चूहों के शत्रु होते हैं। प्रतिवर्ष चूहे फसल का बहुत सा भाग नष्ट कर देते हैं। किन्तु सर्प चूहों को खाकर किसानों को नुकसान से बचाते हैं। इस कारण किसानों के लिये वे मित्र रूप में पूजनीय हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसा विश्वास है कि नाग पंचमी के दिन जमीन नहीं खोदनी चाहिये और न ही खर–पतवार जलानी चाहिये। सर्प भी प्रकृति का अंश हैं उनको नुकसान पहुँचाना या मारना मानवता नहीं है। अगर हम उन्हें प्रेम करेंगे या हानि नहीं पहुँचायेंगे तो वे हमें भी नहीं सतायेंगे। इसी भावना से प्रभावित नाग पंचमी की कथायें हैं।

एक बहु प्रचलित दन्त कथा इस प्रकार है– एक ब्राह्मण के सात पुत्र वधुए जब श्रावण मास आया तब छह पुत्रवधुयें अपने मायके चली गईं परन्तु सातवीं पुत्रवधू के कोई भाई नहीं था इस कारण उसे बुलाने कोई नहीं आया। वह अत्यन्त दुःखी होकर पृथ्वी को धारण करने वाले शेष नाग को याद करने लगी। उसका दुःख देखकर शेष नाग मनुष्य रूप में आकर उसे विदा कराके ले गये। आधे रास्ते बाद वे असली रूप में आये तो वधू भयभीत हो गई। शेषनाग ने उसे सब समझाया तब वह प्रसन्नता पूर्वक उनके साथ चली गई। पाताल लोक में वह समस्त सुखों का भोग करती सुख से रहने लगी। उसी समय शेष–नाग के कुल में बच्चों ने जन्म लिया वे समस्त नाग लोक में विचरण करते थे। नागरानी ने वधू को एक पीतल का दीपक दिया और कहा कि तुम इसे लेकर ही नागलोक में विचरण किया करो जिससे तुम सब देख सकोगी अन्यथा बच्चे पैरों तले कुचल सकते हैं। एक दिन वधू हाथ में दीपक लेकर नागलोक में विचरण कर रही थी तभी उसकी लापरवाही से दीपक हाथों से गिर गया। कुछ नाग बच्चों की पूछें उससे कट गई।

इस घटना से शेषनाग व नागरानी को बहुत दुःख हुआ किन्तु वधू उनकी अतिथि थी, इस कारण उसे उपहार देकर विदा कर दिया गया। जब दूसरा सावन आया तब वधू अपने शेष नाग भाई की याद करके भित्ति पर सर्प आकृति बनाकर खीर का भोग लगाने लगी साथ ही रोती जा रही थी। नागलोक में जिन बच्चों की पून्छ कट गई थी, वे वधू को इसका दोषी मानते थे, इस कारण दण्ड देने हेतु उसके घर गये। किन्तु वहाँ जब वधू को पूजा करते व रोते देखा और गलती की क्षमा मान्गते सुना तब वे द्रवित हो गये। अपने क्रोध का परित्याग कर उन्होंने वधू के हाथों खीर स्वीकार की। वधू को उपहार स्वरूप मणिमाला देकर सर्पों के भय से मुक्ति का आशीर्वाद भी दिया कि जो भी श्रावण शुक्ल पंचमी को नागों की भाई रूप में पूजा करेगा वे उसकी रक्षा करेंगे।

इस कथानुसार नागों को भाई समान पूजने की परम्परा बन गई। उन्हें भित्ति पर चित्रित कर दूध–भात या खीर का भोग लगाकर रक्षा हेतु प्रार्थना की जाती है।

17 कुठला पूजन

सांउन सुदी नमें (श्रावण /सावन माह की शुक्ल पक्ष की नवमी) को होने वाले भित्ति चित्रान्कन का वर्णन पूर्व में किया गया है। उसी दिन परिवार की समृद्धि एवम् धन–धान्य से पूर्ण करने की कामना हेतु किया जाता है – कुठला पूजन। कुठला मिट्टी का बनाया जाता है। यह अनाज भंडारण का बड़ा पात्र होता है। इस पूजन को पति–पत्नी दोनो करते हैं।

अनाज से भरे कुठला को गंगाजल से पवित्र करके उस पर नमें माई की नौ पुतरियां गोबर या हल्दी से चित्रित की जाती हैं। यह पुतरियां ''नौ देवी'' या नव ग्रह की प्रतीक होती हैं। इनको बनाने से यह भावना उत्पन्न होती है कि भंडार भरे रहे। सम्पूर्ण नौ–ग्रह और नौ–देवियाँ उनकी रक्षा करें जिससे समृद्धि बनी रहे। ऐसा विश्वास रखा जाता है कि समृद्धि से ही परिवार में प्रसन्नता तथा आपसी प्रेम बना रहता है।

इस पूजा का उद्देश्य है कि पति–पत्नी के सम्बन्धों में प्रेम विश्वास बना रहे। जिससे वे शुद्ध मन से एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार कर सकें। दोनो के परिश्रम से ही घर में सुख–सम्पन्नता बनी रहेगी। यदि साथ में ईश्वर की कृपा बनी रहेगी तो उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी।

नवमीं के दिन स्त्रियाँ व्रत रहती हैं। विभिन्न प्रकार के मीठे नमकीन पकवान बनाकर पूजन की तैयारी की जाती है। पूजन में बहुत रोचक कहानी भी कही जाती है– एक गरीब ब्राह्मण था। जाति से ब्राह्मण होते हुए भी वह अनपढ़ था, इस कारण कृषि कार्य करता था। ब्राह्मण की पत्नी उसे रूखा–सूखा खिलाकर खेतों पर भेज देती थी। बाद में पकवान बनाकर खाती थी। पड़ोस की स्त्रियों ने यह रहस्य ब्राह्मण को बताया। ब्राह्मण नवमीं को कुठला में छुपकर बैठ गया और पत्नी के कार्य–कलाप देखने लगा। सांयकाल जब ब्राह्मण खेतों से नहीं लौटा तब पत्नी अकेले ही कुठला की पूजा करने लगी और नमें माई से प्रार्थना करने पर कुठला से उत्तर मिला। वह समझी की कुठला बोल रहा है उसकी पूजा सफल हुईं वह प्रसन्न होकर अपनी पड़ोसनों को बुला लाई उनके सामने पति कुठला से बाहर निकला ओर पत्नी के दिन भर के कार्य कलाप बताये जिसे सुन पत्नी लज्जित हुईं

एक दिन ब्राह्मण ने कहा आज खेतों की पूजा है, छप्पन प्रकार के भोजन बनाओ तब पत्नी ने भोजन बनाया पति ने कहा खेतों का प्रसाद स्त्रियां नहीं खाती, और पत्नी को कुछ न दिया। पत्नी इसका अर्थ समझकर क्षमा मान्गने लगी। उस दिन से दोनो पति–पत्नी प्रेम पूर्वक रहने लगे और आपसी विश्वास बनाये रखने की सौगंध खाई।

लोक जीवन में ऐसी पूजा और कहानियों का बहुत सकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता है। जिससे परिवार में एकता और प्रेम संवर्द्धन होता है। जो संस्कृति की रक्षा करने में सहायक होता है।

18 सांउन सुदी नमें

श्रावण /सावन माह की शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन यह पर्व मनाया जाता है। मूल रुप से स्त्रियों का त्यौहार होता है। यह त्यौहार, धन–धान्य से पूरित रहने की मनोकामना तथा पति–पत्नी के मध्य समरसता बनी रहे, का उत्सव है। आज के दिन कोठा/कुठला (बड़ा बर्तन जिसमें अनाज रखा जाता है) में अनाज रख कर, उस पर गंगाजल छिड़क कर पोतनी मिट्टी (पीली मिट्टी) व गोबर से पोत कर, उस पर नौ पुतरियां/पुतलियां बनाई जाती है। महिलाएं उनकी विधि विधान से पूजा करती हैं, व्रत करती हैं साथ ईश्वर से प्रार्थना करती है कि हमारा घर धन–धान्य से सदैव भरा रहे। इसी प्रसंग पर आधारित सम्बन्धित कहानी भी कही जाती है और सुनी जाती है।

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

बुन्देली लोक जीवन में तिथियों का बहुत महत्व है। तिथियों से ही तीज–त्यौहार मनाये जाते हैं। सांउन सुदी नमें अर्थात श्रावण मास की शुक्लपक्ष की नवमीं को भित्ति चित्रान्कन करके शिव–पार्वती की पूजा करने का विधान है। श्रावण मास में शिव–पार्वती का अर्चन करना बुन्देलखण्ड में अति शुभ माना जाता है। श्रावण मास के लगभग सभी त्यौहारों में शिव–पार्वती की पूजा की जाती है। सावन के सोमवार पर शंकर जी ढारने(जल चढ़ाने) की परम्परा है। मास पर्यन्त शिवलिंग पर बेल पत्र चढ़ाने से मनोकामना पूर्ण होती है।

सांउन सुदी नमें का महत्व पूजन के साथ–साथ भुंजरिया बोने के लिये भी है। भुंजरिया बोने के लिये लड़कियाँ ओर महिलायें खेत की उपजाऊ मिट्टी दोने में भरकर रख देती हैं और उसमें गेहूँ के दाने बो देती हैं। भाद्रपद पूर्णिमा अर्थात रक्षा बन्धन के दिन तक गेहूँ अच्छी तरह से उग जायें इसके लिये प्रतिदिन वे उसकी देख–रेख भी करती हैं। रक्षा बन्धन पर बहनें भाईयों को राखी बाँधती हैं तथा भुंजरिया खोंट(तोड़) कर देती हैं। यह शुभ शगुन के रूप में भाई और अन्य लोग स्वीकार करते हैं। भाद्रपद पूर्णिमा को ही समीप की नदी या तालाब में भुजरियां सिराने(विसर्जित करने) की प्राचीन परम्परा है किन्तु महोबा क्षेत्र में भुंजरिया भाद्रपद कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को सिराई जाती है उसे बासौ–सांउन कहते हैं। भुंजरियों का सान्स्कृतिक महत्व है किन्तु भुंजरिया विसर्जन का महत्व चन्देल वंश में घटित ऐतिहासिक घटना के कारण द्विगुणित हो गया है।

दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान राजा परिमाल को पराजित कर उनकी बेटी चन्द्रावलि से अपने पुत्र का विवाह करना चाहते थे। भुंजरियाँ विसर्जन के दिन महोबा स्थित कीर्ति सागर तट पर पृथ्वीराज चौहान और जोगी वेशधारी, वीर शिरोमणि भ्राता–द्वय आल्हा–ऊदल के मध्य घमासान युद्ध हुआ।
जगनिक ने लिखा है–

सावन सुद पूनों गई, भादों परमा आन।   इतै कुंवर जोगी, सजै, उते भूप चौहान।

भुजरियां सिराने रानी मल्हाना व उनकी पुत्री चन्द्रावलि पालकी में बैठकर कीर्ति सागर तट पर आई। उनके साथ नगर की अन्य स्त्रियाँ भी हाथों में भुंजरिया के दोने ले कजरी गीत गाती कीर्ति सागर की ओर चलीं, किन्तु तभी रणभेरी बज उठी। पृथ्वीराज चौहान के शब्दभेदी वाणों को निष्प्रभावी कर चंदेली वीरों ने अपना पराक्रम दिखाया। अन्त में चौहान सेना पराजित हुई। आल्हा–ऊदल ने अपने संरक्षण में भुंजरियों का विसर्जन कराया। बहन चन्द्रवलि ने उनको भुंजरिया खोंट कर दी तथा हाथ में रक्षा सूत्र बाँधा। इस ऐतिहासिक घटना के कारण बुन्देलखण्ड के कुछ क्षेत्रों में जो आल्हा–ऊदल से प्रभावित रहे हैं और वहाँ भाद्रपद की प्रतिपदा को राखी बाँधी जाती है।

भुजरियों को कजलियाँ भी कहते हैं। इनका आर्थिक महत्व भी है। यह आने वाली रबी की फसल कैसी होगी, इसकी बानगी प्रस्तुत करती है। खेतों की मिट्टी और बीज का गेहूँ जब भुंजरियों का रूप लेता है तो उसके अंकुरण से यह अनुमान लगाते है। अगर भुंजरियाँ पीली और बिखरी है तो बेकार फसल, हरी और घनी होने पर उत्तम फसल मानी जाती है। यह मिट्टी परीक्षण का लोक जीवन में सरल तरीका है।

सांउन सुदी नमें के भित्ति चित्रण से पूर्व भुंजरियों के बारे में वर्णन आवश्यक था चूंकि चित्रण में भी भुंजरिया बनती हैं। सांउन सुदी नमें का भित्ति चित्रण चूने से पुती सफेद दीवार पर ही किया जाता है। यह चित्रण रंगीन होता है। इसमें पारम्परिक तथा चूने के रंगों का प्रयोग होता है किन्तु विशेष रूप से स्याही तथा महावर प्रयुक्त होता है। चित्रण चौकोर या आयताकार में किया जाता है। यह चित्रण ज्यामितीय होता है। इसमें भगवान शिव की ज्यामितीय आकृति नीली स्याही से तथा देवी पार्वती की आकृति महावर से चित्रित की जाती है। भुंजरिया के नौ दोने, तुलसी घरा, श्रावणमास के पक्षी मोर, पपीहा भी चित्रित किये जाते हैं। सांउन सुदी नमें से सम्बन्धित कथा की पात्र देवरानी–जेठानी सिर पर मटकी रखे, पालने में सोता शिशु, पृथ्वी पर टोकरी के नीचे मृत सर्प तथा नेवला भी चित्र में बनाये जाते हैं। आल्हा–ऊदल के पराक्रम से प्रभावित क्षेत्रों में कहीं–कहीं घुड़सवार जो सम्भवतः आल्हा–ऊदल हैं। पालकी में बैठी रानी मल्हना और चन्द्रावलि भी चित्रित की जाती हैं। वैसे उनके चित्र कल्पना आधारित ही होते हैं।

पूजन विधान तो सामान्य तौर पर पकवानों और मौसम के फलों का प्रसाद लगा कर धूप, दीप, फूल, बेलपत्र इत्यादि चढ़ाकर पूर्ण किया जाता है।

सम्बन्धित दन्त कथा अत्यन्त रोचक व नैतिक उपदेश देती है–

बिना विचारै जो करै,   सो पीछे पछताय।

त्योहार कैसे मनाते है **Festival Celebration**

काम बिगारै आपनो, जग में होत हैंसाय।।

कथा इस प्रकार है कि एक परिवार में जेठानी–देवरानी थी। वे बड़े प्रेम से रहती थीं उसके कोई सन्तान न थी। इस कारण उन्होंने एक नेवला पाला और उसे पुत्रवत प्यार करने लगीं। दोनो ने शिव पार्वती का सांउन सुदी नमें को व्रत रखकर पूजन किया। फलस्वरूप देवरानी ने पुत्र–रत्न को जन्म दिया। दोनो उसे बहुत प्यार करती थीं। एक दिन घर में कोई नहीं था। शिशु सो रहा था। जेठानी–देवरानी पानी भरने गई और नेवले को शिशु की सुरक्षा के लिये छोड़ गई। उन दोनो के जाने के बाद एक काला सर्प शिशु को डसने के लिये आया, किन्तु नेवले ने उसे मार कर डलिया के नीचे रख दिया। फिर द्वार पर आकर जेठानी–देवरानी की प्रतीक्षा करने लगा। जब वे वापस आई तब नेवले के मुख में रक्त लगा देखकर वे समझीं कि उसने शिशु को मार दिया है। क्रोध में आकर दोनो ने नेवले को मार दिया। जब वे दुखी मन से अन्दर गई तब जाना कि शिशु जीवित है। वे पछताने लगीं और शिव पार्वती का पूजन किया। वे प्रगट हुये तब दोनो ने नेवले को जीवित करने की प्रार्थना की तब भगवान शिव ने कहा कि नेवले ने स्वामिभक्ति दिखाई इस कारण वह देवलोक पहुँच गया और तुम दोनो को अपनी करनी का पश्चाताप हो रहा है, इससे तुम्हारे पाप धुल गये। प्रतिवर्ष हमारे पूजन में तुम्हारी कथा कही जायेगी जिसको सुनने से सबको ज्ञान प्राप्त होगा।

19 रक्षाबन्धन

श्रावण शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा/पूर्णमासी को रक्षाबन्धन का पर्व मनाया जाता है। यह बहुत ही पवित्र भावनाओं का त्यौहार है। इस उत्सव का महत्व अन्य प्रान्तो की अपेक्षा बुन्देलखण्ड में कुछ अधिक ही है। आज के दिन सभी बहिनें अपने भाइयों को राखी बाँधती है। इस त्यौहार में भाई भी पूरा उत्साह व स्नेह के साथ बहिनों से राखी बँधवाते हैं तथा राखी के उपलक्ष्य में अपनी बहिनों को क्षमतानुसार उपहार देते हैं।

यह पर्व आल्हा ऊदल के समय से अधिक प्रचलित है। इस त्यौहार पर बहनें अपने भाइयों के हाथ में राखी बांधकर उनके कल्याण की कामना करती हैं और अपनी सुरक्षा का वचन उनसे लेती हैं। सबसे पहले राखी ईश्वर को समर्पित की जाती है। आज के दिन पकवान में संमूदी रोटियां बनाई जाती है। यह पर्व अत्यन्त ही पावन व पुनीत माना गया है तथा बहन व बेटियां पूज्य मानी जाती है। इस पर्व में जाति भेद का बन्धन नहीं है।

इतिहास साक्षी है – वीरांगना कर्मवती ने हुमायूं जैसे विधर्मी को इसी एक डोर से भातृत्व के बन्धन में बांधकर अपने राज्य की रक्षा की।

सम्भावित राजपूत भाइयों ने उसका साथ देने से मना किया होगा।

बुन्देलखण्ड में यह त्योहार अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस पर पर बहन अपने भाई की प्रतीक्षा करती हुई अपने उद्‌गार व्यक्त करती है।

वीरन, तेरे बिन कोउ नैयां, राखी का बन्दवैया।
एक दिन सावन का रैगओ, लेव सुद मोरे भैया।।

अर्थात् एक दिन सावन में रह गए तेरे बिना कोई नहीं है जो राखी को बंधवाये, सावन में एक ही दिन रह गया है मेरे भाई मेरी सुध ले लो।

20 हरजोती हरीजोत

श्रावण मास की कृष्ण पक्ष की अमावस्या को मनाया जाता है। इसमें परिवार की कुंवारी कन्याओं की पूजा करके उनके प्रति सम्मान को प्रदान किया जाता है। यह कुमारी कन्याओं की पूजा है। यह पूजा भी कुनघुसुपूनों की तरह किया जाता है। पूजा स्थल पर कन्याओं की हल्दी से पुतरियां/पुतली बनाकर उनकी पूजा करते हैं। उत्सव से सम्बन्धित कहानी सुनाई जाती है व सुनी जाती है। यह त्योहार कन्याओं के सम्मान का सूचक है तथा पारिवारिक एकता को मजबूत करता है और स्त्री सम्मान को प्रदर्शित करता है।

21 हरियाली अमावस्या

बुन्देलखण्ड में पूनें(पूर्णिमा) तथा अमाउस(अमावस्या) का बहुत महत्व होता है। यह दोनो तिथियाँ किसी त्यौहार से कम नहीं होतीं। लड़कियों का यदि एक ही गाँव या शहर में विवाह हुआ होता है तो मायके में उन्हें अमाउस पूने भोजन पर सपरिवार आमंत्रित करने की प्रथा है। इन तिथियों में समाज में खबासन(नाइन), मेहतर और काम करने वालों(सेवक वर्ग) को पावन(भोजन) देने का रिवाज है।

श्रावण मास की अमावस्या हरियाली अमावस्या कहलाती है, बुन्देलखण्ड में इसका बहुत महत्व है। यहाँ कन्या को देवी समान माना जाता है। अपने परिवार की तथा दूसरे की बेटी को सम्मान देकर पैर छूते हैं। विन्ध्य संस्कृति में विन्ध्याचल पर्वत और विन्ध्यवासिनी देवी पूजनीय है। ऐसी संस्कृति को मानने वाले क्षेत्र में बुन्देलखण्ड में कन्याओं में देवी रूप देखना अत्यन्त सामान्य बात है। अन्य क्षेत्रों में भी कन्या को देवी स्वरूप मानते हैं, किन्तु यहाँ हरियाली अमावस्या को पूजा गृह में कन्या का चित्रान्कन कर पूजने की अनोखी प्रथा है।

हरियाली अमावस्या पर परिवार के मान्यों को ''चूल्ह का न्यौता''(सपरिवार भोजन का निमन्त्रण) देते है। मान्यों में दामाद, बेटी, ननद, ननदोई तथा उनका परिवार सम्मिलित होता है। प्रातः काल से परिवार की सभी महिलायें भोजन बनाने में लग जाती हैं। घर की वरिष्ठ महिला पूजागृह की भित्ति पर गोबर से लीप कर उस पर हल्दी से कन्या रूपी पुतरिया चित्रित करती है। श्रावण मास को भाई बहन के स्नेह का मास कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी। श्रावण मास में भाई, विवाहित बहनों को मायके ले आते हैं। बहन के उद्‌गार एक लोकगीत में प्रदर्शित हैं –

चार मास चौमासे, मोसे रहियो न जाये,
कहियो मेरे वीरन से, लेओ पठाय।

बहन–भाई के उसी प्रेम के प्रतीक ''सोनी–सोना'' गेरू या हल्दी चावल को पीस कर ''ऐपन'' तैयार करके चित्रित किये जाते हैं। पुतरिया तथा सोनी–सोना की पूजा दूध–भात या खीर का भोग लगाकर की जाती है। अक्षत रोली, धूप, दीप, फूल इत्यादि से विधि–विधान से पूजा होती है। आमंत्रित परिवार भोजन करते हैं। प्रेम पूर्वक धन या उपहार देकर उनकी विदा सम्मानपूर्वक की जाती है।

22 बाबू की दौज

भाद्रपद माह की शुक्ल पक्ष द्वितीया तथा माघ शुक्ल पक्ष द्वितीया को मनाया जाता है। यह बहुत ज्यादा प्रचलित में नहीं है।

बुन्देलखण्ड में लगभग सभी देवी;–देवताओं की पूजा होती है। साथ ही लोक—–देवता भी पूजे जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक परिवार के अपने कुल–देवी और कुल–देवता होते हैं। उनका पूजन वर्ष में दो बार तथा जन्म या विवाह आदि मंगल कार्यों के समय किया जाता है। बाबू की दौज ऐसी ही पारिवारिक कुल देवी या देवता की पूजा है। जिसमें पूरा परिवार सम्मिलित होता है। इस पूजा को कहीं बाबू–गुसाई और कहीं मांय–बाबू की पूजा भी कहा जाता है। बाबू की दौज कुछ परिवारों में नहीं होती है अधिकतर ब्राह्मण समाज में अवश्य होती है। यह पूजा पारम्परिक ''मांय के पट'' के समक्ष की जाती है। ''मांय के पट'' प्रत्येक परिवार की कुल देवी या कुल माता का प्रतीकात्मक चित्र होता है। इसको बनाने की विधि एक जैसी ही होती है। एक मिट्टी से निर्मित तख्ती को या फिर पूजागृह की दीवार को गोबर व चूने से पोतकर तैयार किया जाता है। उसे पट कहते हैं, उस पर हल्दी या गेरू से पुतरियां चित्रित की जाती हैं। इन पुतरियों की संख्या जाति व परिवार के आधार पर परिवर्तित हो जाती है। सामान्यतः छह या सात पुतरियां बनाई जाती हैं।

बाबू की दौज की पूजा वर्ष में दो बार भाद्र पद मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया तथा माघ मास की शुक्ल पक्ष की द्वितीया को की जाती है।

बाबू की दौज के दिन अधिकान्श घरों में कच्ची रसोई (दाल, कढ़ी, रोटी, चावल, फरा, बरा आदि) बनाई जाती है। इसे पारिवारिक भोजन की संज्ञा दी जाती है। पूजा करने से पूर्व घर की कन्याओं को पूजा में सम्मिलित होने से रोक दिया जाता है। पुत्रियों को दूसरे परिवार में जाना है। इस भावना से पारिवारिक पूजा में उनका भाग लेना वर्जित है। पट के समक्ष भूमि पर एक कोरा रंगीन कपड़ा बिछाया जाता है जिसे ''फरका'' कहते हैं। उस फरके पर परिवार के

सदस्यों की संख्या के अनुसार कौरा/कौर (घर में पके भोजन के अंश) रखते हैं। इस क्रिया को ''कोरा पसारना'' कहते हैं। मांय के पट की पूजा हल्दी–चावल–पुष्प से करते है। घी की जोत(ज्योति) जलाई जाती है। इस जोत का पूजा में अत्यन्त महत्व है, इसे बाबू की जोत कहते हैं। वास्तव में जिस परिवार के सभी सदस्य मिलजुल कर पूजा करें और कुल देवी का आशीर्वाद प्राप्त करें, उस घर में ज्ञान और प्रेम की ज्योति का महत्व तो होना ही चाहिये। परिवार के सभी सदस्य इस जोत को देखते हैं।

पूजा के पश्चात घर के मुखिया या वरिष्ठ महिला के हाथों सभी अपना–अपना कौरा प्रसादस्वरूप ग्रहण करते हैं। जो भी कोरा लेता है वह मांय के पट और अपने से वरिष्ठ के पैर छूता है। पूजा में दक्षिणा भी चढ़ाई जाती है, जो घर की वरिष्ठ महिला को सौंपी जाती है। यह परम्परा पारिवारिक धन की बचत के रूप में चलाई गई लगती है। वर्ष में दो बार बाबू की दौज की पूजा के समय, वरिष्ठ महिला को सौंपी गई धनराशि परिवार की आवश्यकताओं हेतु खर्च कर दी जाती है। उस धन का कम या अधिक होना पारिवारिक आमदनी पर निर्भर करता है। कई बार ऐसा होता है कि परिवार का कोई सदस्य पूजा में सम्मिलित नहीं हो पाता है किन्तु उसका कोरा अवश्य निकाला जाता है। उस कोरा को परिवार का कोई दूसरा सदस्य ग्रहण कर लेता है। लोक–जीवन में पारिवारिक प्रेम ओर सामंजस्य का इतना सुन्दर उदाहरण कोई दूसरा हो ही नहीं सकता वर्ष में दो बार होने वाली पूजा, दूर रहने वाले पारिवारिक सदस्यों को पास ले आती है।

पूजा के बाद जोत के ऊपर कोई बर्तन ढक देते हैं, जिससे जोत बुझ जाती है इसे जोत सिराना कहते हैं। अगर परिवार की लड़की का विवाह ऐसे घर में हो जाये जहाँ बाबू की पूजा होती है, तो वह अपने पिता के घर होने वाली बाबू की पूजा में सम्मिलित हो सकती है।

23 हरितालिका हरतालिका तीज/तीजा

भाद्रपद माह की शुक्ल पक्ष तृतीया को मनाया जाता है। ग्रेगोरियन कैलेंडर के अनुसार अगस्त या सितंबर के महीने में आता है। हरतालिका तीज हिन्दू महिलाओं द्वारा मनाए जाने वाले सबसे बड़े त्योहारों में से एक है। यह निर्जल ही रखा जाता है। इस व्रत में रात्रि जागरण का भी विधान है। बुन्देलखण्ड के सभी घरों में यह व्रत रखकर सभी स्त्रियां मिलकर भजन आदि गाकर रात भर जागती है।

इस व्रत में अन्न, फल, फूल, जल आदि कुछ भी ग्रहण नहीं किया जाता है। इस अवसर पर महिलाएं व्रत रखती हैं, सजती–संवरती हैं और अपने हाथों और पैरों को महावर या मेहंदी से सजाती हैं। व्रत कथा पढ़े या श्रवण किए बिना व्रत पूरा नहीं माना जाता। ऐसा माना जाता है कि जो महिला इस व्रत को एक बार कर लेती है, उसे ये व्रत जीवन भर रखना पड़ता है। यदि ऐसा करने में असमर्थ हैं तो उसके स्थान पर पति या कोई अन्य महिला भी यह व्रत कर सकता है।

हरतालिका तीज पर व्रतधारी स्त्रियों को क्रोध करने से बचना होता है। इस दिन पति या दूसरों से वाद–विवाद, दूसरों के प्रति द्वेष की भावना से बचा जाता है। साथ ही वाणी पर संयम बनाए रखा जाता है, तभी व्रत सफल होगा। मान्यता है ऐसा करने से व्रत का प्रभाव कम हो जाता है और पूर्ण फल नहीं मिलता। इसमें शिव पार्वती की मिट्टी की बनी मूर्तियों की पूजा की जाती है। निर्जल व्रत रह कर शिव गौरी के समक्ष स्त्रियां पूरी रात जाकर भजन पूजन कीर्तन करती हैं। व्रत के एक दिन पूर्व महिलाएं दौज / द्वितीया के दिन सेवई, खीर या अन्य की खीर ग्रहण कर, जामुन की दातुन से मुख शुद्ध करती है। 24 घण्टे के पूजन के पश्चात स्त्रियां, सुबह मूर्ति विसर्जन के उपरान्त, तालाब से लौट कर खीर का सेवन करती हैं इसके पश्चात व्रत सम्पूर्ण होता है, सम्पूर्ण को माना जाता है।

24 गणेश चतुर्थी

यह भाद्रपद माह की शुक्ल पक्ष की चौथ/चतुर्थी को पड़ती है। गणेश जन्म चतुर्थी के रूप में भी यह पर्व मनायां जाता है। पुराणों के अनुसार इसी दिन गणेश का जन्म हुआ था। काली मिट्टी की गणेश प्रतिमा बनाकर स्त्रियां एवम् पुरूष उसका पूजन करते है। इस व्रत का महत्व बुन्देलखण्ड में मराठों के शासन काल के बाद अधिक बढ़ा। गणेश चतुर्थी की कहानी भी पढ़ी जाती है। यह व्रत महाराष्ट्र में अधिक प्रचलित हें तथा गणेशजी वहाँ के इष्ट हैं।

गणेश उत्सव को जन्म से लेकर एकादशी के दिन तक जल विहार एवम् प्रतिमायें विसर्जित करने तक मनाते हैं। गणेश महोत्सव के पर्व पर भक्तगण

गणपति बब्बा मोरया उदयावर्ती लोकरया

के नारे लगाते है। यह उत्सव बुन्देलखण्ड के अधिकतर जनपदों में उत्साह पूर्वक मनाया जाता है।

<u>25 ऋषि पंचमी / रिग पाँचे</u>

बुन्देली में इसे रिग पाँचे कहा जाता है। भाद्रपद शुक्ल पक्ष की पंचमी को बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है। पुराणों के अनुसार वृत्तासुर दैत्य के वध से कृष्ण को पाप लगा तब इन्द्र की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने उस पाप को चार भागों में विभाजित कर दिया।

1) अग्नि की प्रथम ज्वाला में
2) वर्षाकाल में नदी के फेन में
3) वृक्ष से टपकने वाली मस्ती में
4) रजस्वला स्त्री में

इसी आधार पर पाप नाशक व्रत के रूप में इसकी मान्यता है।

ऋषि पंचमी व्रत में सप्त ऋषियों का पूजन करने से पापों से मुक्ति प्राप्त होती है। ऋषि पंचमी पर पुरुष और महिलाएं सप्त ऋषियों की पूजा करती हैं और उनके आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। इन सप्त ऋषियों के नाम कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वशिष्ठ है

आँगन या पूजागृह में चौक पूर कर उस पर पटा रखते हैं। पान का ताजा हरा पत्ता लेकर उस पर सात पुतरे सप्त–ऋषियों के प्रतीकात्मक रुप में हल्दी या चंदन से चित्रित किये जाते हैं। कुछ स्त्रियाँ अरून्धती को भी चित्रित करती हैं। जल, हल्दी, चंदन, रोली, अक्षत, हवन इत्यादि से विधि विधान से पूजन करते हैं। लकड़ी के पाटे पर घिसे चन्दन से सप्त ऋषियों की मूर्ति बना कर अनकी पूजा की जाती है। इस व्रत में हल से जोत कर उगाए अन्न को खाना वर्जित है। समा की खीर, भैंस का दूध, मेवा, फल–फूल आदि प्रसाद सप्त ऋषियों को अर्पित कर स्त्रियाँ स्वयम् ग्रहण करती है।

स्त्रियाँ महाभारत काल के आख्यान के अनुसार इस व्रत को रखती हैं। उसमें कृष्ण ने युधिष्ठर को बताया था कि जो स्त्रियाँ रजस्वला स्थिति में गृह कार्य करती रहती हैं तो उन्हें पाप लगता है। उसकी निवृति हेतु ऋषि पंचमी का व्रत रहना आवश्यक है। पूजा से सम्बन्धित एक कथा भी है–

सौमित्र नामक एक ब्राह्मण था उसकी पत्नी का नाम जयश्री था। जयश्री रजस्वला स्थिति में गृहकार्य करती रही। इससे दूसरे जन्म में उसे कुतिया का स्वरूप मिला और पति बैल बना। इस योनि में भी वे अपने ही घर रहे। पितृपक्ष में उनकी पुत्रवधू खीर बना रही थी कि उसमें सर्प गिर गया। कुतिया की योनि में जयश्री ने सोचा यह खीर यदि ब्राह्मणों ने खाई तो उनकी मृत्यु हो सकती है, ऐसा सोच उसने खीर गिरा दी। पुत्र व पुत्रवधू ने क्रोधित होकर बैल व कुतिया को भोजन नहीं दिया। रात में बैल व कुतिया उसी सन्दर्भ में बात कर रहे थे, जब पुत्रवधू ने सुना तो दुःखी हुई पश्चाताप हेतु वह गंगातट गई वहाँ पर ऋषियों से भेन्ट हुई। उन्होंने पशु योनि से मुक्ति हेतु भाद्रपद की शुक्ल पक्ष की पंचमी को सप्तऋषि तथा अरून्धती की पूजा का उपाय बताया। इसी कथा और महाभारत के प्रसंग के अनुसार ऋषि पंचमी का व्रत रखना स्त्रियों के लिये अनिवार्य माना गया है।

ब्रह्मपुराण के अनुसार ऋषि पंचमी का व्रत व्यक्ति को जन्मों के आवागमन से मुक्ति दिलाकर स्वर्गलोक का वासी बनाता है। व्रत में ''हरछठ'' के समान हल का जोता अन्न नहीं खाया जाता है।

<u>26 मौराई छठ</u>

भाद्रपद माह की शुक्ल पक्ष की षष्ठी को मनाया जाता है। जिन परिवारों में गत एक वर्ष में विवाह हुआ है, उनमें विवाह की मौर जलाशय में विसर्जित करने के निमित्त यह त्यौहार मनाया जाता है।

सावन के महीने में वर–पक्ष द्वारा ''साउनी'' भेजी जाती है, तब भाद्रपद शुक्ल पक्ष में मौराई छठ भेजते है। नव–विवाहिता के माता–पिता, लड़की की ससुराल में वस्त्र, आभूषण, गृहस्थी का सामान आदि अनेकों प्रकार की वस्तुयें

नाई द्वारा भेजते है। सायंकाल महिलाओं का बुलौआ वर–पक्ष के यहाँ लगता है। स्त्रियाँ मौरई छठ की सामग्री देखकर पारंपरिक गीत–गाकर मौर विसर्जित करती है। इस कार्यक्रम ''मोर सिरावौ'' कहते है।

सांउनी तथा मौराई छठ विनिमय कार्यक्रम हैं। सावन के महीने में वर–पक्ष द्वारा ''साउनी'' भेजी जाती है, उसके पश्चात कन्या–पक्ष के द्वारा मौराई छठ भेजी जाती हैं।

27 सन्तान सप्तमी

भाद्रपद माह की शुक्लपक्ष की सप्तमी को बुन्देलखण्ड की सभी महिलाएँ संतान सप्तमी का व्रत करती हैं। कहा जाता है कि इस व्रत की प्रथा द्वापर काल से प्रचलित है। यह त्यौहार संतानों के कल्याण की भावना के साथ मनाया जाता है। स्त्रियाँ भगवान शिव–पार्वती की पूजा करती है तथा व्रत रखती हैं। पूजा में शिव व पार्वती के समक्ष स्त्रियों अपने हाथों में सात पुआ तथा एक चूड़ी रखती हैं। स्त्रियों प्रसाद में पुआ ग्रहण करती है। संतान सप्तमी का व्रत आज भी समग्र बुन्देलखण्ड में श्रद्धा पूर्वक मनाया जाता है।

28 गड़ालैनी आठें

भाद्रपद मास की शुक्लपक्ष की अष्टमी को ''गड़ा'' लेने का विधान है। गड़ा(गंडा) लेना से तात्पर्य है कि व्रत करने का संकल्प लेना। गड़ा एक पवित्र धागा होता है। गड़ा से तात्पर्य है ''ग्रन्थि गुन्थित डोरा'' इसमें डोरा में सोलह गाठें लगाई जाती है। जो सौभाग्यवती स्त्रियों महालक्ष्मी की पूजा करती हैं वे आठें से गड़ा लेकर प्रतिदिन उसमें एक गाँठ लगाती हैं। गड़ा में गाँठ लगाने का भी विधि विधान होता है। स्त्रियां ब्राह्मण से गड़ा लेने के बाद पटे पर हाथी का चित्रण करती हैं। यह चित्रण चन्दन या हल्दी से किया जाता है। चित्रण किया गया पटा पूजा गृह में या पवित्र किये स्थान पर रख दिया जाता है।

गड़ालेनी आंठे से लेकर महालक्ष्मी व्रत तक प्रतिदिन प्रातः काल शुच्च लेती हैं। यह शुच्च सम्भवतः शुचि का अपभ्रंश है। इसमें शरीर पर सोलह लोटे पानी प्रत्येक अंग के नाम का डाल कर स्नान किया जाता है। स्नान के बाद वे पटे पर चित्रित हाथी के समक्ष रखे गड़े में एक गाँठ लगाती हैं, और मन ही मन महालक्ष्मी का स्मरण कर व्रत रखने का संकल्प लेती है। जब सोलह गान्ठे पूरी हो जाती हैं तब तक अश्विन मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी आ जाती हैं। अष्टमी पर मिट्टी के अनपके हाथी को रखकर पूजा की जाती है। ग्रंथि युक्त डोरे(गड़े) को पूजा में अवश्य रखा जाता है। आटे के मीठे सुरा, टिकियाँ या ठेंठरा प्रसाद हेतु बनते हैं। बेसन से हाथी और उस पर विराजमान राजा–रानी के आभूषण और छत्र बनाते हैं। इस पूजन में दूर्बा अवश्य रखी जाती है। महालक्ष्मी वाले दिन हरी दूर्बा से शुच्च लिया जाता है। इस पूजन में सोलह संख्या का बहुत महत्व होता है। सोलह गाँठों का धागा, सोलह बत्ती का दीपक, सोलह सुरा, सोलह ठेंठरा यहाँ तक कि सोलह बोल की कहानी भी कही जाती है, इसे सोलह बार कहने की परम्परा है–

आमोती दामोती रानी, पोला पल पाटन गाँव
हमसो काते, तुमसो सुनती, सोरा बोल, की एक कानियाँ,
सुनो आमोती दामोती रानी
हाथी पूजियौ।

सम्भवतः पितृपक्ष में होने वाली यह पूजा सोलह संस्कारों की याद दिलाती है या फिर सौभाग्यवती स्त्री के सोलह श्रृंगारों को सन्दर्भित करती है। पन्द्रह दिन तक गड़े में गाँठ लगाकर सोलह संख्या के महत्व को प्रदर्शित करता है।

पूजा से सम्बन्धित महाभारत कालीन कथा है– कुन्ती से गांधारी ने बड़े गर्व से कहा कि मेरे सौ पुत्र हैं वे शीघ्रता से मिट्टी के हाथी का निर्माण कर लेंगे लेकिन तुम्हारे पाँच पुत्रों को देर लगेगी। इस व्यन्न्य से आहत कुन्ती को सान्त्वना देकर अर्जुन ने बाणों की सीढ़ी बनाकर स्वर्ग से साक्षात ऐरावत हाथी उतार कर पूजा करवाई। कहानी में नैतिक सन्देश है कि परिवार में गर्व से ईर्ष्या उत्पन्न होती है, जो विघटन का कारण बनती है। महाभारत का युद्ध उसी का परिणाम था।

29 डोल ग्यास

यह भाद्रपद माह की शुक्लपक्ष की एकादशी को मनाया जाता है। यह पर्व ''जल बिहार'' के नाम से भी जाना जाता है। इस जल के विहार का अपना विशेष महत्व है। वर्षाकाल में नदियों का जल अपवित्र माना जाता है। वर्षाकाल के नदियों के जल को पवित्र करने के लिए भगवान उसमें अपने चरण पखारते हैं, जिससे जल पवित्र हों जाता है, फिर वही जल मानव समाज के कार्य सुलभ योग्य हो जाता है। इस यात्रा को डोल कहते है और पर्व ''डोल ग्यास '' कहलाता है। आज के ही दिन स्त्रियां व्रत रखती है व एकादशी व्रत महात्म्य की कथा सुनी व सुनाई जाती है।

30 ओक–दुआस

भाद्रपद शुक्ल पक्ष की द्वादशी पर गाय–बछड़े की पूजा की जाती है जिसे बुन्देली में ''ओक–दुआस'' कहते हैं। गो–धूलि की बेला में साक्षात गाय–बछड़े की पूजा की जाती है पूजा में विशेष रूप से सात उरई की सीकें, पीले कपड़े में बांध कर, गाय के सींग में बाँधकर, स्त्रियाँ गाय के कान में कहती हैं– "तुमाओ रोये, हमाओ हंसे। इसका तात्पर्य यह लगता है कि सींग में सात सींक सात वचन के समान है जो पीले कपड़े में इस विश्वास के साथ बाँधी जाती है कि– हे गाय माता आप अपने पुत्र(बछड़े) के हिस्से का दूध मेरे बच्चे को प्रदान करे जिससे वह स्वस्थ रहे। यह उल्लेखनीय है कि गाय का दूध बच्चों के लिये पौष्टिक होता है। प्रसाद में बेसन की पपरियां, उबले चने व तले चने बाँटे जाते है। जब साक्षात गाय–बछड़ा नहीं मिलता तब सूप पर हल्दी से गाय–बछड़ा चित्रित कर पूजने की परम्परा है।

31 अनन्त चतुर्दशी

यह भाद्रपद माह की शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को मनाया जाता है। भादों शुक्ल चतुर्दशी को इस क्षेत्र में अनन्त भगवान की अर्चना बड़ी श्रद्धा भावना से प्रत्येक घर में होती है। इस व्रत को प्रायः सभी स्त्री–पुरूष करते है। दिन में व्रत रखकर मध्याह्न में पूजन करते हैं। एक चौक के ऊपर पटा रख कर उस पर अनंत रखते हैं। अनंत सूत या सोम के धागा से चौदह बिंदिया हल्दी से लगाकर उस पर गुंथे आटे की लोई रखकर चौदह बार सरकाई जाती है तथा ''धाप अनंत'' कहकर पूजा करते हैं। पूजन के समय अनन्त भगवान की कथा कही जाती है। पूजन के बाद ब्राह्मण को भोजन कराते हैं।

32 कनागत

यह भाद्रपद माह शुक्लपक्ष की पूर्णिमा से आश्विन (क्वॉर) कृष्ण पक्ष की अमावस्या तक पितृ–पक्ष मनाते है। बुन्देलखण्ड में इसे ''कनागत'' कहते है। यह पर्व पितरों की पूजा स्मरण तथा दानपुण्य का पर्व है। इस अवधि में शुभ कार्य करने का निषेध होता है। इसे बुन्देली शब्दावली में ''करये दिन'' भी कहते है। ''करये'' का अर्थ हैं कड़ुवा। विवाह रिश्ता आदि की बातें इन दिनों प्रारम्भ नहीं की जाती है।

33 भुजरियां

भाद्रपद माह की कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को राखी के त्यौहार के अगले ही दिन, अगले ही महीने बासौ सावन या भुजरियों का त्यौहार मनाते हैं इस पर्व को कजलिया का पर्व, कघलियों का त्योहार भी कहते हैं। सावन सुदी नवें/नवमी के दिन भुजरियों की मिट्टी पत्तों के दाने में डाल देते हैं, जिसमें जवा/जौं व गेहूं बो देते हैं। गान्व की लड़कियां जवा/जौं व गेहूं की भुजरियों को ले जाकर जलाशय में विसर्जित करती है। भुजरियों को एक दूसरे को भेन्ट करके उनसे गले मिलते हैं। बड़ों को भुजरिया लेते या देते समय उनके पैर छूते हैं। कई स्थानों पर भुजरियों के मेले लगते हैं। महोबा में कीरत सागर के किनारे और उरई में माहिल तालाब पर ऐतिहासिक कजरी कजली मेला होता है। कजलियां पर्व प्रकृति प्रेम और खुशहाली से जुड़ा है।

34 हरछठ

भाद्रपद मास में कृष्ण पक्ष की षष्ठी तिथि पर हलषष्ठी मनाई जाती है जिसे बुन्देली में
''हरछठ'' या ''हलछठ''
कहा जाता है। बलराम कृष्ण के बड़े भाई थे। वे अत्यन्त बलशाली थे। उनका जन्म दिवस को, पुत्रवती स्त्रियाँ बहुत नियम से व्रत रखकर मनाती हैं और प्रार्थना करती हैं कि बलराम जैसा बलशाली और भाग्यवान पुत्र उनका भी हो। भगवान बलराम का मुख्य आयुध हल तथा मूसल है। इसी कारण कृषि कार्य करने वाले हल की पूजा भी उस दिन करते हैं। उस दिन खेतों में हल चलाना मना है। चूंकि हल पूजित है इस कारण हल का जोता हुआ अनाज खाना व्रत

में निषेध है। लोक परम्परा है कि व्रत रखने वाली स्त्रियां, हरछठ को गाय का दूध व उससे बना कोई भी पदार्थ जैसे दही, घी, इत्यादि प्रयोग नहीं करती हैं क्योंकि गाय का पुत्र बैल होता है और बैल खेतों में जुताई करने के काम आता है। इसी कारण हरछठ को भैंस का दूध, उससे बना दही व घी प्रयोग करती है। महुआ तथा पसई का चावल, जो तालाब के समीप घास में उत्पन्न होता है, व्रत में खाया जाता है। शक्कर गन्ने से बनती है और गन्ना खेतों में बोया जाता है इस कारण शक्कर भी व्रत में वर्जित है। महुआ की दातुन की जाती है।

व्रत रखने वाली स्त्रियां भित्ति चित्रान्कन कर हरछठ की पूजा करती हैं। वैसे तो यह भगवान बलराम का जन्म दिन है किन्तु षष्ठी तिथि पर होने के कारण इसे देवी का रूप मान लेते हैं। यह षष्ठी देवी के रूप में चित्रित भी की जाती है। भित्ति पर भैंस के गोबर से लीपकर आयताकार आकृति बना लेते हैं जब वह सूख जाये तब चावल भिगो कर पीस कर घोल तैयार कर लेते हैं और लकड़ी में रूई लगाकर ब्रश तैयार कर लेते हैं। पिसे चावल का घोल तैयार करके ब्रश की सहायता से षष्ठी देवी का मुख बनाते हैं, तत्पश्चात उनकी वृहद काया बनाई जाती है। दोनो ओर दो हाथ तथा नीचे दो पैर बनाते हैं। हरछठ में भगवान कृष्ण तथा बलराम के पारम्परिक शैली के चित्र बनते हैं। सूर्य–चन्द्रमा, गंगा–यमुना, माँ–पुत्र, खिलौने, दही बेचने वाली, हल चलाता किसान, स्याऊ झालर गाय, जरिया, छेवला इत्यादि चित्रानुसार आकृतियाँ बनाते हैं। बुन्देलखण्ड में यह पुरानी परम्परा का चित्रण है। ग्रामीण क्षेत्रों के दूरवर्ती भागों में छेवले(ढाक /पलास/ छिउल) के पत्ते पर हल्दी, ऐपन या चंदन से छह पुतरियाँ या एक पुतरा बनाकर छह गाँठ लगाकर, काँस से, पत्ते को बाँध देते हैं। उसी की पूजा की जाती है। बुन्देलखण्ड विस्तृत क्षेत्र में कई बार एक ही पूजन के विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं।

हरछठ पूजन करने के लिये आँगन में आटे या ऐपन से चौक बनाकर उस पर जरिया (छोटी बेरी/जारी) तथा छेवले(ढाक) की डाल मिट्टी में रखकर गाड़ देते हैं। भित्ति चित्रण के समक्ष छोटी–छोटी मिट्टी की डबुलियों में छह प्रकार का भुना हुआ मिला जुला अनाज (गेहूँ, चना, जौ, मक्का, धान और महुआ) भर देते हैं। छेवले/पलाश की "दुनिया"(एक पत्ते से बना दोना) में पसई का चावल(काले रंग का चावल) और दही मिलाकर रख देते हैं। डबुलियाँ और दुनिया/दोने संख्या में छह होती है। पूजा में धूप, दीप, नैवेद्य आरती के साथ कथा कहना अनिवार्य है। हल षष्ठी की पूजा में छह कहानी कहने की परम्परा है। सभी कथाओं का सार तथा सन्देश यहीं होता है कि दूसरे के सुख व समृद्धि से कभी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये। ईश्वर ऐसे व्यक्तियों की इच्छा कभी फलीभूत नहीं होने देते। बुरा सोचने का प्रतिफल हमेशा बुरा ही होता है। इस कारण सदैव दूसरे की भलाई की सोचें। साथ ही झूठ बोलने का परिणाम भी भुगतना पड़ता है। इसी प्रकार के नैतिक सन्देशों को समाहित कर "हलछठ" की कहानियाँ कही जाती हैं।

एक कहानी है जो बुन्देलखण्ड में प्रमुख रूप से प्रचलित है– एक मठियारी (मठा बेचने वाली) थी वह दूसरे गाँव जाकर प्रतिदिन मठा बेचा करती थी। वह बहुत व्यवहार कुशल थी, किन्तु उसे झूठ बोलने की खराब आदत थी। मठियारी गर्भवती हुई तब भी प्रतिदिन मठा बेचने जाया करती थी। एक बार वह खेत पार करके दूसरे गाँव जा रही थी, तभी प्रसव पीड़ा हुई। वहीं छेवले के पेड़ के नीचे उसने एक पुत्र को जन्म दिया। वह हरछठ का दिन था। मठियारी ने सोचा कि मैं गाँव जाकर मठा बेच आउ लेकिन पुत्र जन्म होने का पता चलने पर खरीदने वाली स्त्रियाँ उसे अपवित्र समझ मठा नहीं लेंगी। इसे कारण वह अपने पुत्र को छेवले के पत्तों से छुपा कर गाँव जाने लगी। खेत में एक किसान हल चला रहा था। मठियारी ने उससे कहा कि छेवले के पेड़ के नीचे मेरा सामान रखा है तुम उसकी रखवाली करना मैं अभी मठा बेचकर आती हूँ। किसान मान गया। मठावाली गाँव में गाय के दूध के मठे को भैंस के दूध का मठा बताकर बेच आई। इधर किसान मठियारी को दिया वचन भूल गया और उसने हल छेवले के पेड़ के नीचे तक चला दिया, जिससे मठियारी के नवजात शिशु के पेट में हल का फल चुभ गया। शिशु के रोने पर किसान ने छेवले के पत्ते हटा कर देखा तो वह बच्चे को देखकर हतप्रभ रह गया। किसान ने जरिया के कांटे से शिशु के पेट में टाँके लगा दिये। जब मठियारी आई तब शिशु की हालत देखकर रोने लगी। किसान के समझाने पर वह समझी कि झूठ बोलने के कारण यह सब हुआ है। मठियारी ने गाँव जाकर सभी व्रतधारी स्त्रियों को बताया कि मठा गाय का है, वे प्रयोग न करें। हल षष्ठी मइया की कृपा से मठियारी का पुत्र जीवित हो गया। इस प्रकार मठियारी ने सत्य बोलकर अपने पुत्र की जान बचाई।

दूसरी कथा है कि एक धर्मात्मा राजा थे। उन्होंने जनता की भलाई के लिये तालाब खुदवाया किन्तु उसमें पानी नहीं भरा। पन्डितों ने बतायाकि यदि तालाब में राजा अपने बच्चे की बलि दें तो पानी भर सकता है। माँ के रहते पुत्र की बलि दी नहीं जा सकती, इस कारण राजा ने रानी को मायके भेजकर पुत्र की बलि दे दी। तालाब पानी से भर गया। उधर रानी ने हरछठ का व्रत रखा उसे अपने पुत्र की याद आई तब उसने जाने का निश्चय किया। अपनी माँ के कहने पर कि आज हरछठ है इसलिये जुते खेतों में होकर नहीं जाना। रानी मेंड़–मेंड़ चलती हुई जा रही थी और हरछठ मइया से अपने पुत्र की दीर्घायु की कामना कर रही थी। तभी उसने तालाब में कमल पत्र पर अपने पुत्र को खेलते देखा। वे पुत्र प्रेम में वशीभूत हरछठ की कृपा से पानी पर चलती हुई पुत्र को उठा लाई।

त्योहार कैसे मनाते है Festival Celebration

इसी कथा को थोड़ी फेर बदल के साथ जेठानी की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति से जोड़कर दूसरी कथा कही जाती है कि देवरानी के छह बच्चों से निःसन्तान जेठानी जलती थी इस कारण देवरानी के मायके जाने पर जेठानी ने बच्चों को तालाब में फिकवा दिया। शेष कहानी उपर्युक्त कहानी के अनुसार ही कही जाती है।

इसी प्रकार एक कहानी माँ व पुत्र के प्रेम के बारे में कही जाती है। जिसमें पुत्र पत्नी के कहने पर माँ के पास नहीं जाता था, किन्तु षष्ठी देवी की कृपा से उसे माँ की याद आई। माँ द्वारा उसके खिलौने, बचपन के कपड़े इत्यादि बहुत सम्भाल कर रखे देख, पुत्र को माँ के स्नेह का पता चला जिससे वह वहीं रह गया और पत्नी को भी बुला लिया। दोनो माँ की सेवा करने लगे। कहानियों के बाद आँगन में लगाई गयी छेवला और जरिया की डाल की परिक्रमा की जाती है। स्त्रियां छह बार कहती है।

जोता खाँऊ न जोता रौदू, आज मेरी दौं दौ।

35 जन्माष्टमी / कन्हैया–आठे

कृष्ण जन्माष्टमी को बुन्देली में "कन्हैया आठें कहा जाता है। कृष्ण जन्म का उत्सव सम्पूर्ण भारत वर्ष में मनाया जाता है।

कृष्ण गाय तथा पशुओं के रखवाले हैं। वे कृषकों और ग्वालों के प्रिय है। अपनी बांसुरी की धुन पर तीनों लोकों को मोहित करने वाले हैं। ऐसे सुन्दर रूप व गुण वाले कृष्ण, बुन्देलखण्ड में भी सर्वप्रिय हैं।

भादों मास (भाद्रपद) की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र में मध्य रात्रि (12 बजे) कृष्ण जन्मोत्सव के रूप में मनाई जाती है। स्त्री पुरूष दोनो व्रत रहते हैं। मन्दिरों व घरों में कृष्ण–जन्म व जन–जीवन से सम्बन्धित झांकियाँ सजाई जाती हैं।

बुन्देलखण्ड में घरों के भीतर पूजागृह या आन्गन की चूने से पुती हुई भित्ति पर जन्माष्टमी का चित्रण करना स्त्रियों व बालिकाओं की कलात्मकता का प्रतीक होता है। यह चित्रण जन्माष्टमी से कई दिन पहले से प्रारम्भ हो जाता है। यह रंगीन चित्रण है इस कारण अत्यन्त लुभावना होता है। इस चित्रण में पारम्परिक रंगों के साथ प्राकृतिक फूल–पत्ती के रसों का प्रयोग भी किया जाता है। रंग प्रयोग भी स्वेच्छा से किया जाता है। आकार का बड़ा या छोटा होना चित्रण करने वाली स्त्री या बालिकाओं की इच्छा पर निर्भर होता है। कृष्ण जन्म से लेकर बाल्यकाल तक की विशेष घटनाओं को भित्ति पर मनोयोग से चित्रित किया जाता है। इस चित्रण में चित्रों की संख्या या कृष्ण लीलाओं की विशेष घटनाओं के चित्रण का कोई बन्धन नहीं होता है। भित्ति चित्रण बनाने वाली स्त्री के कृष्ण कथा ज्ञान पर निर्भर करता है। पुराने समय में पास–पड़ोस में सुन्दर "कन्हैया आठें" लिखने की प्रतियोगिता सी होती थी। वर्तमान में चित्रण परम्परा लगभग समाप्त हो गई है।

प्रसाद के लिये पंजीरी, पंचामृत, सोंठ के लड्डू और हरीरा बनाने का प्रचलन है। कई प्रकार के मेवा भी पागे(शक्कर या गुड़ की चाशनी से जमाना) जाते हैं। वास्तव में यह पूजा ईश्वर भक्ति के साथ कृष्ण जन्म से पूर्व की तैयारी भी है जिसमें माता देवकी और यशोदा के लिये प्रसव के बाद के व्यन्जन भी बनाये जाते हैं।

मध्य रात्रि में चित्रांकित भित्ति के समक्ष गोबर से लीपकर चौक पूर लेते हैं। उस पर सिंहासन रखकर बाल–गोपाल कृष्ण की मूर्ति विराजमान की जातीहै। मूर्ति को यमुना जल में स्नान कराके खीरा काटा जाता है जिसे "नरा छीनना" कहते हैं। बुन्देली लोकगीत में इसका वर्णन है –

ऐसी मिजाजिन दाई, कन्हैया को नरा न छीने,
नरा न छीने, मौ हूं न बोले, ठाड़ी ओंठ बिदोलें।

तत्पश्चात मूर्ति को नवीन वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर सिंहासन पर विराजमान किया जाता है। झूला भी डाला जाता है जिस पर "कन्हैया जू" को झुलाते हैं। प्रसाद चढ़ाकर भजन–कीर्तन होता है तब व्रत का पारायण किया जाता है।

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

कृष्ण जन्म से सम्बन्धित कथा सर्वविदित है कि– अत्याचारी राजा कंस की चचेरी बहन देवकी का विवाह वसुदेव से हुआ, तब आकाशवाणी हुई कि देवकी का आठवाँ पुत्र कंस का काल बनेगा। कंस ने देवकी, वसुदेव को कारागार में बन्दी बनाकर रखा। उनके सात बच्चों को उसने जन्म लेते ही निर्दयतापूर्वक मार डाला। आठवें पुत्र के रूप में कृष्ण ने जन्म लिया। तब वसुदेव ने उन्हें यमुना पार ब्रज में नन्द और देवकी के घर छोड़ आये। वहीं पर पल बढ़ कर कृष्ण ने बाल्यकाल की अनेक लीलायें कीं। अन्त में कृष्ण ने कंस का वध कर माता–पिता को मुक्ति दिलाई।

कृष्ण कर्मयोगी थे। उनके जीवन का प्रभाव लोक–जीवन में बहुत पड़ा है। सामान्य वर्ग में
कर्म पर अधिक विश्वास किया जाता है। कृष्ण पशु रक्षक हैं तथा उनके जीवन में प्रेम का रस भी है। यह दोनो पक्ष सदैव जन–मानस को आकर्षित करते रहे हैं।

<u>36 बुढ़वा मंगल</u>

यह भाद्रपद माह की शुक्लपक्ष के अन्तिम मंगलवार को मनाया जाता है। भाद्रपद माह के अन्तिम मंगलवार को "बढ़वा मंगल/ बुढ़वा मंगल " का मेला हनुमान मन्दिरों पर भारी जन सैलाब के साथ लगता है। बुन्देलखण्ड के निवासी हनुमान दर्शन के लिए अनेकों सिद्ध स्थानों पर जाकर पूजन करते है एवम् व्रत रखते है। प्रसाद में देशी घी के मीठे पुआ, बेसन के लड्डू, पेड़ा, बताशा आदि का भोग लगाते है। यह प्रसाद सभी भक्तगणों को वित्तरित किया जाता है।

<u>37 सुआटा/</u> नवरात्रि सुआटा

बालिकाओं बालकों में प्रारंभिक अवस्था में ही जीवन यात्रा की दीर्घकालिक तैयारी, कला और संगीत के प्रति अभिरुचि सौंदर्य बोध का विकास, संघर्ष के साथ भी मृदुल समरसता एवम् समृद्धि का समन्वय क्रीड़ा व क्रियात्मक का अप्रत्यक्ष उद्देश्य है। जीवन के अनेक भावी कार्यों का कलात्मक ढंग से प्रशिक्षण की भावना से कुछ खेल बुन्देली लोक नृत्य का महत्वपूर्ण अंग बन गए। इनमें आकृति और सुभाष का विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है। अकती, सुआटा कुछ ऐसे ही उदाहरण है।

अकती, अक्षय तृतीया के रूप में या आकृति के रूप में पूरे देश में पूजित है। किन्तु उस समय बुन्देली बालक बालिकाओं द्वारा कलात्मक ढंग से बनाई गई पुतरा पुतरियां(कठपुतली) सौंदर्य बोध सृजन, क्षमता, कला प्रियता का अद्भुत समन्वय व उदाहरण है। इस क्षेत्र में यह कला युगो युगो से विकसित हो रही है, हो चुकी है। इस अवसर पर अक्ति के गीत गाए जाते हैं। विवाहोन्मुख कुमारियों की सभ्यता सलज्जता, शलीनता तथा प्रिय के प्रति सर्वाधिक अनुराग का प्रतिबिंब इन गीतों में होता है। ये उनको भविष्य के लिए तैयार भी करते हैं और एक तरह की शिक्षा भी प्रदान कर दी जाती है।

सुआटा बुन्देलखण्ड का प्रमुख लोकोत्सव है। यह आश्विन(क्वार) मास की शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नवरात्रि तक प्रतिदिन उषाकाल में खेला जाता है। यह नवरात्रि में खेला जाता है इस कारण इसे ''नौरता'' भी कहते हैं। नौ+रता अर्थात नौ रातें।

क्वॉर/अश्विन माह के शुक्ल पक्ष के प्रतिपदा से दुर्गा–पूजन (नवरात्रि) प्रारम्भ होता है। आज के से ही ''सुआटा'' का मनोरम खेल प्रारम्भ हो जाता है। आज के दिन सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में नीलकंठ पक्षी के दर्शन एवम् मछलियों को देखना शुभ मानते हैं। बुन्देलखण्ड की कुवांरी कन्याओं के लिए सुआटा अनोखा खेल है। इस खेल का अलग विधान है। इस खेल में सम्मिलित होने वाली बालिकायें सुआटा को मिट्टी से दिवाल पर थापती है। लड़कियाँ चबूतरों पर तरह–तरह की अल्पना बना गीत गाती हैं। यह बुन्देलखण्ड का महत्वपूर्ण त्यौहार है।

सुआता एक क्रियात्मक उपासना विधान है और दीर्घकालिक है। यह भाद्रपद पूर्णिमा से आश्विन पूर्णिमा तक चलता है। इसके पांच अंग/भाग है।:–

1. मामूलिया
2. नौरता/नवरात्र
3. सुआटा
4. टेशू
5. झिझिया

त्योहार कैसे मनाते है Festival Celebration

इन पांच अंगों से सम्बन्धित यह खेल बालकों में उनकी कल्पनाशीलता विकसित करने, प्रकृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करने, सौंदर्य बोध तथा कला प्रेम बढ़ाने का उपक्रम है। बेर की कटीली टहनी को भी नारी के रूप में सजाने का प्रयास, जापान की इकवानों शैली की तरह ही है। इसमें कांटे, फल और फूल का आपस में संघर्ष, सृजनात्मक उपलब्धि तथा अनुराग, अनुरागात्मक माध्यम, माध्यम का प्रतीक है। एक और यह खेल प्राचीन कथा पर आधारित है जिसका पुष्टिकरण या ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। दूसरी और यह अंधविश्वास में जकड़ी मान्यताओं की ओर भी संकेत करता है। बुन्देलखण्ड का विशिष्ट लोकोत्सव है। इसके साथ जुड़ी संस्कृति व जनश्रुतिपरक कथा का यहां उल्लेख आवश्यक है। कथा के अनुसार, प्राचीन काल में सुआटा नाम का विलासी दैत्य, कुमारी कन्याओं को परेशान करता था। जब किशोर किशोरी बालिकाएं सहेलियों के साथ वन गिरी को जाती थी तब वह दैत्य उन्हें परेशान व छेड़खानी करता था। स्वयम् की पूजा करने हेतु बाध्य करता था।

बालिकाएं चन्द्राबली तथा सूरजबली नामक, धर्म भाइयों से रक्षा की याचना करती थी। उनके संरक्षण में सुरक्षित घर पहुंचने की अनुमति लेकर वनों में चलती थी। कन्याएं, मां गौरी का पूजन करके उनसे भी दैत्यों की छेड़खानी से मुक्ति दिलाने हेतु प्रार्थना करती थी। इसी बीच टेसू नामक वीर का उदय होता है। वह सुआटा दैत्य की पुत्री ''झिंझिया'' (कहीं कहीं से इसे ढिरिया भी कहते हैं) पर मोहित हो जाता है। वह सुआटा को परास्त करके झिंझिया के साथ विवाह रचा लेता है। विवाह के पश्चात सुआटा का अंग प्रत्यंग लूटा जाता है व हाथ–पैर तुड़वा कर फेंक दिए जाते हैं। उसके रत्नालंकृत आवरण तथा आभरण की प्रतीक कौडियों को लूट कर लोग घर ले आते हैं। विजय पर्व पर अर्जित सम्पत्ति का प्रतीक ये कौड़ियां तिजोरी में रखना लोग शुभ मानते हैं।

इसके पीछे एक किम्वदन्ती है – राजा हिमान्चल निःसन्तान थे। उनकी कन्यायें जन्म लेकर कालकवलित हो जाती थी। राजा को इसका रहस्य पता चला कि ''सुआटा'' नाम का राक्षस (दैत्य) उनकी कन्याओं का भक्षण करता है। इस प्रकार दैत्य को प्रसन्न करने के लिए पूजा का विधान वनाया गया, वही आज के सुआटा का प्रतिरूप है।

सुआटा से सम्बन्धित अनेक ऐतिहासिक पौराणिक एवम् लोक कथायें प्रचलन में हैं। महाभारत कालीन घटना के अनुसार घटोत्कच का पुत्र बर्बरीक अत्यन्त बलशाली और देवी का परम भक्त था। वह महाभारत के युद्ध में पांडवों की ओर से वीरता पूर्वक लड़ा। अन्त में मृत्यु को प्राप्त हुआ। मद हनन के युद्ध में पांडवों की ओर से वीरता पूर्वक लड़ा। अन्त में मृत्यु को प्राप्त हुआ। मृत्यु से पूर्व उससे भगवान कृष्ण ने अन्तिम इच्छा के बारे में पूछा। बर्बरीक ने कहा मैं अविवाहित हूँ इस कारण विवाह करना चाहता हूँ तथा दूसरी इच्छा यह है कि मैं महाभारत का सम्पूर्ण युद्ध अपनी आँखों से देखना चाहता हूँ। भगवान कृष्ण ने बर्बरीक की अन्तिम इच्छा का सम्मान करते हुये उसे वरदान दिया कि कलयुग में समस्त क्वारी कन्याओं से तुम्हारा विवाह होगा। उसका सिर काट कर कृष्ण ने समीप की पहाड़ी के शिखर पर रख दिया जिससे वह युद्ध देखता रहे। इस कथानक को सुआटा से सम्बन्धित करने पर सुआटा की चित्रित दानव आकृति और ढाल तलवार युक्त छवि बर्बरीक की मानी जाती है। यह भी माना जाता है कि सुआटा खेल में बालिकाओं का विवाह सुआटा से होता है। वीर पुरूष की छवि लिये टेसू का सिर बर्बरीक का कटा सिर माना जाता है, जो पर्वत के शिखर पर था।

किन्तु दूसरी ओर लोक कथा इसका खण्डन करती है उस लोक कथा के अनुसार – संकटासुर(सुआटा) नामक दैत्य कुमारी कन्याओं का अपहरण कर उनके साथ विवाह रचाता था। बालिकाओं ने देवी माँ की पूजा कर सुआटा से रक्षा करने की गुहार की। दुर्गा जी ने सुआटा का वध किया। सुआटा को देवी दुर्गा के हाथों मुक्ति प्राप्त हुई। इस कारण प्रतिवर्ष माँ दुर्गा के साथ उसका भित्ति चित्र बनाकर लोकोत्सव मनाया जाता है।

माँ दुर्गा शक्ति स्वरूप में नवरात्रि में पूजी जाती है। उन्होंने महिषासुर जैसे राक्षस से नौ दिन युद्ध करके उसका वध किया, जिसे कोई पुरूष नहीं मार सकता था। दुर्गा महिषासुरमर्दिनी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। सम्भवतः सुआटा महिषासुर का लोक स्वरूप है। नवरात्रि में बालिकायें देवी स्वरूपा मानी गई हैं। नवमीं को सुआटा का अन्त महिषासुर का वध ही है। दूसरी प्रकार से यह कह सकते हैं कि आसुरी शक्ति पर माँ दुर्गा की देव शक्ति की विजय का प्रतीक सुआटा लोक उत्सव है।

किवदंती है कि राजा हिमांचल की पुत्रियों को सुआटा नामक दैत्य खा जाता था तब किसी ब्राह्मण ने बताया कि कन्याऐं यदि सुआटा की पूजा करें तो वह राक्षस प्रसन्न होगा। बालिकायें ऐसा ही करने लगीं, इसी कारण सुआटा खेला जाता है।

नवरात्रि के नौ दिनों तक लड़कियां नौरता खेलती है। नवरात्रा के बहाने भगवान शंकर और पार्वती की पूजा किया करती हैं। उस समय लड़कियां सामूहिक रूप से गीत गाया करती हैं। उस समय गाया जाने वाला गीत कुछ इस प्रकार का है।:–

हिमांचल जू की कुंवरि लड़ायती, नारे सुआटा।
गौराबाई नेरा तो बधाइओं, बेटी नौ देना, नारे सुआटा।
दस दिन करियो उपास, उपास करें, माई मेडें लड़ें, नारे सुआटा।

झिलमिल हो झिलमिल तेरी आरती, महादेव तेरी पारती।
को बाऔ नौनी, चंदा बाऔ नौनी।
सूरज बाऔ नौनी, नौने सलोनें भवजी कतं तुमाये।
बीरन हमाये। झिलमिल हो झिलमिल तेरी आरती, महादेव तेरी पारती।

अन्य एक जनश्रुति के अनुसार टेसू नामक वीर दैत्य सुआटा दैत्य तथा उसके पुत्री झिंझिया को सताता था। अन्त में समझौता हुआ और सुआटा को टेसू के साथ झिंझिया का विवाह करना पड़ा। अभी भी टेसू खेलने वाले लड़के, चोरी–छिपे सुआटा नामक राक्षस के हाथ पैर तथा नाक कान काट लेते हैं।

सामान्यतः लोक कथाओं में भी पात्रों की स्वरूप भिन्नता देखने को मिलती है। यही प्रवृत्ति टेसू में देखी जाती है। अगर ध्यान से देखा जाए तो यह अन्य त्योहारों पर भी लागू है। सुआटा का लोकगीत कथात्मक है। इसमें कुमारी बहन का बाल सुलभ हठ, मां का वात्सल्य पूर्ण उत्तर, परदेस में ब्याही बहन की खोज, तथा उसे लिवाने जाते समय परोपकार के अनेक कार्य करते जाने का रोमांचक वर्णन है।

लोक कथाओं में सबसे प्रचलित लोक–कथा है कि सुआटा नामक दैत्य बालिकाओं को नवरात्रि में दुर्गा उपासना नहीं करने देता था। वह जंगल के मार्ग में निकलकर उन्हें परेशान करता था। बालिकायें सूरजबलि और चन्द्रबलि नामक मुँह बोले भाइयों के सन्रक्षण में देवी पूजन हेतु जाती थीं। कालान्तर में टेसू नामक दैत्य का उदय हुआ जिसने सुआटा को मार दिया और उसकी पुत्री ''ढ़िरिया'' से विवाह किया। एक अन्य लोक–कथा में सुआटा को भूतनाथ अर्थात शंकर मान लिया गया है किन्तु अन्त में उसका अंग–प्रत्यंग, साज सज्जा लूट कर उल्लास मनाना, इसे बात का खण्डन करता है।

ऐतिहासिक घटनाक्रम के आधार पर, गढ़कुण्डार पर मुहम्मद तुगलक ने आक्रमण कर दिया अनेकों जुझौति वीरों ने अपना बलिदान दे दिया। स्त्रियों द्वारा जौहर किया गया। बचे हुये जुझौति वीर पूर्वजों के देश सौराष्ट्र जाने के लिये कुन्तवार(वर्तमान में भिण्ड) में डेरा डाले थे। तब उन दुःखी ग्रामीण युवतियों की गुहार उन्हें पुनः जुझौति रण भूमि तें ले आई। आईं युवतियाँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिये उन्हें पुकार रहीं थीं।

पून्छत–पून्छत आये नारे सुआटा, कौन बड़ी से तेरी पौर।

यहाँ लोक गीत की पन्क्ति को स्पष्ट करने हेतु सुआटा का शब्द विन्यास आवश्यक है। सुन–ऊटा अर्थात सुन्दर अट्टालिकायें तथा नारे अर्थात जय जय कार। स्त्रियों की करूण पुकार सुनकर वीर सामन्तों ने जुझौति के अन्चलों में वेश बदल कर ग्रामीण युवकों (टेसू) को गुरिल्ला युद्ध हेतु प्रशिक्षित किया, जो शत्रु सेना से शस्त्र व रसद लूट कर उन्हें शक्तिहीन बना देते थे।

टेसू अगड़ करें, टेसू झगड़ करें, टेसू लेई कै टरै।

युवतियाँ रात्रि में ढिरिया के प्रकाश में सैन्य टुकड़ियों को मार्ग दिखाती थी तथा सूचनायें पहुँचाती थी। उस समय ढिरिया का छिद्र युक्त घड़ा समाज की जर्जर अवस्था का परिचायक था तथा दीपक धर्म व सतीत्व का प्रतीक था।

नवरात्रि प्रतिपदा से एक दिन पूर्व सुआटा बनाने के लिये बालिकायें उचित चबूतरा चुन लेती हैं। घरों के बाहर के चबूतरे इसके लिये उपयुक्त होते हैं। दीवार के सहारे मिट्टी से हिमालय पर्वत या सिन्हासन बनाया जाता है। उस पर्वत मे नौ सीढ़ियां बनाते हैं। पर्वत के ऊपर भित्ति पर मिट्टी से सुआटा दैत्य की आकृति बनाकर उसके हाथ में ढाल–तलवार दे दी जाती है। आँखों, मुंह तथा नाभि में कौड़ियों का प्रयोग किया जाता है। लड़कियाँ अपने पुराने टूटे

आभूषणों और चूड़ियों से उसकी साज–सज्जा करती हैं। आकृति के दोनो ओर सूरज–चंदा बनाते हैं। सीढ़ियों के नीचे दोनो ओर स्तम्भ बनाकर उन पर कुण्ड बनाये जाते हैं जिन्हें दुग्ध कुण्ड कहते हैं।

प्रतिपदा को प्रातः बालिकायें समीप के तालाब पर ''अज्जा झारों'' से अपने सिर पर पानी ढारती हैं। प्रतिपदा से अष्टमी तक वे गौरी पूजन का व्रत लेती हैं। नौ दिन वे गृह कार्य से मुक्त रहती हैं। वे नौ दिन तपस्या के समान होते है। स्नान करने के बाद सुआटा के चबूतरे पर जाकर पर्वत की सीढ़ियों पर चिड़िया बनाकर रखती है। पर्वत पर शिव–पार्वती की मूर्ति भी स्थापित की जाती है। प्रतिदिन सुआटा का आवाहन किया जाता है। एक कन्या दुग्ध–कुण्ड से दूध, दूर्बादल की सहायता से लेकर, सब कन्याओं पर छिड़कती है।

दुग्ध कुण्ड से दूध लेकर अर्घ्य छिड़क कर कांय डाली जाती है। बाकी बचा दूध पड़ा(निम्न जाति का कोई बालक) को पिला देती है। कथात्मक गीत भी गाये जाते हैं जो सुआटा और गौर से सम्बन्धित होते हैं। फिर सभी कन्यायें समूह में नौरता स्थल से रंगों की एक या दो रेखायें बनाती हुई मार्ग में कुछ दूरी तक चली जाती हैं। मार्ग में रूक कर गोबर से थोड़ी जगह लीपकर बचे हुये रंगों से भूत की आकृति बनाती हैं। फिर उस आकृति के चारों ओर खड़े होकर हथेली पर थोड़ा पानी लेकर एक दूसरे की हथेली थपथपाते हुए गाती हैं। प्रतिदिन अपने घर तथा पड़ोसियों से चन्दा लेकर इस खेल की सामग्री आती है।

चतुर्थी के दिन वे कुम्हार के यहाँ से गौरा रानी की सुसज्जित मूर्ति लाती हैं। उसका नियमित पूजन किया जाता है। गौरा की प्रशंसा के लोक गीत भी गाये जाते हैं। अष्टमी के दिन सुआटा का व्रत माना जाता है। उस दिन सम्ध्या को सुआटा खेला जाता है। बालिकायें घरों से विभिन्न भोजन सामग्री लाती हैं तथा मिल बाँट कर खाती हैं। बालू का भूत बनाकर मिटाया जाता है जो दानवी शक्तियों का अन्त प्रदर्शित करता है। उस दिन रात्रि जागरण होता है ''ढ़िरिया'' खेली जाती है। यह एक मिट्टी की छेददार मटकी होती है जिसकी तली में थोड़ी राख भरकर ऊपर जलता दिया रखकर बालिकायें झूम–झूम कर नृत्य करती हैं। मटकी में नौ या ग्यारह छेद होते हैं। यह ''ढिरिया'' पूरे गाँव में फिराई जाती है। सभी रूपया, अनाज आदि श्रद्धापूर्वक देते हैं। बालिकायें आशीष के अक्षत घर में डालती हैं। एकत्रित धन और अनाज नौरता के बाद भोज में खर्च कर दिया जाता है। नवमीं खेल का अन्तिम दिन होता है। इस दिन प्रातःकाल बालिकायें तालाब पर जाकर सिर धोती हैं। कांय उतारी जाती है। बासे चौक मे कांय मौन होकर डाली जाती है। दुग्ध कुण्ड से जल, कद्दू के फूल से लेकर गौरा पर छिड़कती हैं। चबूतरा साफ करके घर से लाकर मलियों(बड़े दियों) में मीठे पकवान भरकर रख दिये जाते हैं। गौर के सामने चौक पूरते हैं। वे चौक पर पटा रखकर गौरा शंकर की प्रतिमायें उस पर रखकर पूजन हवन करती हैं। अनुष्ठान में हुई गलतियों की क्षमा मान्गती हैं। बालक सुआटा के अंग प्रत्यंग छिन्न भिन्न करते हैं। कौड़ी घरों में सम्पत्ति के समान रखी जाती है। जिन बालिकाओं का विवाह हो जाता है, उन्हें सुआटा का उद्यापन करना होता है। इसे ''सुआटा उजाना'' कहते हैं। सुआटा खेल में प्रति चरण पर लोक गीत होते हैं।

बुन्देलखण्ड में प्रत्येक स्थान पर सुआटा खेला जाता है। थोड़े बहुत विधान या खेल के तरीकों में अन्तर होता है।

बुन्देलखण्ड में क्वारी कन्याओं द्वारा नवरात्रि में ''नौरता'' खेलने की परम्परा है। नौरता का शाब्दिक अर्थ है नौ रातें या नवरात्रि। नौरता बुन्देलखण्ड का लोकोत्सव है। यह 5 भागों में खेला जाता है।

1. मामूलिया
2. नौरता/नवरात्र
3. सुआटा
4. टेसू
5. झिझिया

कहीं कहीं यह 4 भागों में भी खेला जाता है।

1 सुआटा, 2 झिंझिया, 3 टेसू, 4 झिंझिंया–टेसू का विवाह

इस लोकोत्सव में लड़के–लड़कियां सभी भाग लेते हैं। सुआटा मित्ति चित्रण है, इस कारण उसका विस्तृत विवरण दिया गया है। सुआटा के समक्ष प्रतिदिन कन्यायें रंगीन अल्पनायें या चौक बनाती हैं जो भूमि चित्रण होते हैं। भूमि पर बनाई गई यह अल्पनायें बालिकाओं की कलात्मक प्रतिभा की परिचायक होती है। इन भूमि चित्रणों की विशेषता यह होती है कि उसमें प्रयुक्त रंग भी बालिकायें स्वयम् तैयार करती हैं। गहरा लाल रंग गेरू से तथा भूरा

लाल खपरैल पीस कर तैयार किया जाता है। इसी प्रकार दूधिया पत्थर को घिस कर सफेद रंग बनाती है। ईंट से हल्का लाल, हरी पत्तियों को सुखाकर, पीसकर तथा छानकर हरा रंग तैयार किया जाता है।

इस प्रकार लगभग सभी रंग प्रकृति से तैयार किये जाते हैं। इन अल्पनाओं की विशेषता यह होती है कि प्रत्येक बालिका प्रतिदिन नवीन आकृति एवम् संयोजन प्रस्तुत करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार वे आगामी जीवन में कला की अभिव्यक्ति के महत्व को समझती हैं। खेल की भावना से वे अनेक चौक बनाती हैं। जिसके माध्यम से उनमें कलात्मक अभिरूचि जागृत होती है। चौक बनाने के लिये गाँव में किसी के घर के सामने का चबूतरा चुना जाता है। वहीं भित्ति पर सुआटा बनता है। बालिकायें गोबर से लिपे चबूतरे को चूने की "ढिक"(मोटी लकीरें) देकर अनेक भागों में विभाजित कर लेती हैं। तत्पश्चात् एक–एक भाग प्रत्येक बालिका का निश्चित क्षेत्र हो जाता है। उसमें वे प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान कर चौक या अल्पना बनाती हैं। यह आपसी प्रतिस्पर्द्धा भी होती है कि अधिक सुन्दर अल्पना कौन बनायेगी। ग्रामीण क्षेत्रों में यह लोकोत्सव बहुत उत्साह से मनाया जाता है।

भूमि चित्रण अन्य कई अवसरों पर भी किया जाता है।

38 दशहरा / दसैरा

"दशहरा" का त्यौहार आश्विन शुक्ल पक्ष की दशमी को मनाया जाता है। इस दिन भगवान श्रीराम ने लंका के राजा रावण का वध कर विजय प्राप्त की थी इस कारण इसे "विजय दशमी" भी कहा जाता है। "ज्योति निर्बन्ध" में लिखा है कि आश्विन शुक्ल दशमी को तारा उदय होने के समय "विजय" नामक काल होता है। विजयदशमी या दशहरा से सम्बन्धित अनेक पौराणिक एवम् ऐतिहासिक कथायें तथा प्रसन्ग हैं। जो दशहरा महात्म्य को उद्घाटित करती हैं।

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार–

प्राचीन काल में देवताओं और असुरों में कई वर्षों तक युद्ध हुआ। असुरों का राजा महिषासुर बड़ा अत्याचारी था। उसे तपस्या करने से यह वरदान मिला था कि उसे कोई पुरूष नहीं मार सकता। ब्रह्मा ने अन्य देवताओं के कहने पर माँ दुर्गा से प्रार्थना की। तब दुर्गा ने काली का रौद्र रूप धारण किया। उन्होंने महिषासुर से नौ दिन तक युद्ध किया। आश्विन शुक्ल पक्ष की दशमी को देवी दुर्गा ने महिषासुर का वध किया, जिससे महिषासुरमर्दिनी कहलाईं। इस कथा के अनुसार प्रतिपदा से नवमी तक दुर्गा की प्रतिमा का पूजन किया जाता है। दशमी को दुर्गा की प्रतिमा का विसर्जन बड़ी धूम–धाम से करते हैं।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र, रामायण और महाभारत काल की घटनाओं का साक्षी रहा है। रामायण कालीन कथानुसार– भगवान श्री राम ने रावण पर विजय प्राप्त करने के लिये नौ दिनों तक दुर्गा के शक्ति स्वरूप की उपासना की। श्री राम ने पूजन में एक सौ आठ पद्म पुष्पों को अर्पित करने का सन्कल्प लिया था। माँ दुर्गा ने परीक्षा लेने के लिये एक पुष्प अदृश्य कर दिया। श्री राम ने सन्कल्प पूर्ण करने के उद्देश्य से अपने कमल समान नेत्र को अर्पित करने का निश्चय किया। जैसे ही उन्होंने नेत्र निकालने का प्रयत्न किया, उसी समय माँ दुर्गा ने प्रगट होकर श्रीराम को ऐसा करने से रोका और रावण वध का आशीर्वाद दिया। दशमी को राम ने माँ शक्ति की प्रतिमा का पूजन कर विसर्जन किया। तत्पश्चात् रावण से युद्ध कर उसका वध किया।

दशहरा पाप का अन्त करने, असत्य पर सत्य की विजय के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है। क्षत्रियों में दशहरा विजय–पर्व के रूप में मनाया जाता है, क्योंकि श्रीराम ने इसी नक्षत्र में लंका पर चढ़ाई करके विजय प्राप्त की थी।

दशहरे पर शमी वृक्ष की पूजा करना भी शुभ माना जाता है। महाभारत–कालीन घटना के अनुसार जब दुर्योधन ने पांडवों को जुए में हरा दिया और यह शर्त रखी कि वे बारह वर्ष वनवास में रहें और एक वर्ष अज्ञातवास में बिताएं। अज्ञातवास में पहचाने जाने पर उन्हें पुनः वनवास भोगना पड़ेगा। अज्ञातवास काल में पांडवों व अर्जुन ने अपना गांडीव तथा बाकी शस्त्र एक शमी वृक्ष में छुपा दिये और स्वयम् वृहन्नला रूप में राजा विराट के यहाँ रहे। राजा विराट के पुत्र कुमार के साथ जब अर्जुन गौओं की रक्षा के लिये वन में गये, तब शमी वृक्ष से अपना धनुष बाण लेकर शत्रुओं का नाश किया। शमी वृक्ष ने अर्जुन के शस्त्रों की रक्षा की, इस कारण पूजनीय हो गया। इसी प्रकार श्री राम के लंका विजय हेतु प्रस्थान करते समय शमी वृक्ष ने राम की विजय कामना की थी। सम्बंधित कथाओं में युद्ध वर्णन के कारण दशहरे का महत्व क्षत्रियों के लिये अधिक बढ़ गया।

बुन्देलखण्ड में दशहरे का अलग महत्व है। यहाँ कृषि कार्यों की प्रधानता है। इसी के साथ ईश्वर को स्मरण कर सभी कार्य प्रारम्भ किये जाते हैं। इसी श्रृंखला में गोबर–पाथने(कंडा बनाने) का क्रम दशहरे से ही प्रारम्भ किया जाता है। इस कारण विशेषतया ग्रामीण क्षेत्रों में दशहरे के दिन घरों में आँगन की भूमि लीप कर उस पर आटे से चौक पूरी जाती है। उस चौक पर गोबर की दस टिकियाँ रखी जाती हैं, जिन्हें ''दसरैया'' कहते हैं। उन दसरैयों की पूजा काशीफल या तुरई के फूल, ''ऐपन''(हल्दी और चावल का पिसा मिश्रण) तथा अन्य पूजन सामग्रियों से ''दसरैयां'' पूजी जाती हैं यह पूजन गोबर की उपयोगिता एवम् गुणों का आदर प्रदर्शित करता है।

दशहरे पर शमी वृक्ष की पत्तियाँ बांटी जाती हैं। प्रातःकाल ''सोन''(मछली) देखना तथा नीलकण्ठ का दर्शन शुभ माना जाता है। ''दशरये को पान'' खिलाकर आपस में प्रेम बढ़ाने की परम्परा है। अनेक स्थानों पर मेले भी लगते हैं।

<u>39 शरद पूणिमा</u>

अश्विन/क्वार मास की शुक्ल पक्ष की पूर्णमासी के दिन मनाया जाता है। यह पर्व बुन्देलखण्ड प्रान्त में क्वॉर की शुक्ल पक्ष की पूर्णमासी के दिन ही इसे बड़े धूमधाम के साथ मनाया जाता हैं। आज के दिन से ही कार्तिक स्नान शुरू होता है। मन्दिरों में उत्साह एवम् उल्लास के साथ पूर्णिमा के दिन कीर्तन और भजन होता है। पुराणों के अनुसार चन्द्रमा में अमृत का वास होता है व शरद पूणिमा रात को ही पृथ्वी लोक पर बरसता है। जो व्यक्ति इन किरणों का आनंद उठाता है, उसे सन्जीवनी शक्ति प्राप्त होती है। शरद पूर्णिमा के दिन स्त्रियाँ खीर बनाकर चन्द्रमा का भोग लगा कर पूरी रात के लिए खुले आसमान के नीचे रख देती है। जिसमें रात को अमृत बरसता है, और इसे खाने से अनेक रोग व व्याधियो दूर होती है, ऐसा लोगों का मानना है।

<u>40 दुर्गा आठें</u>

इसे दुर्गा अष्टमी के रूप में भी जानते हैं। दुर्गा की उपासना वर्ष में दो बार चैत्र मास में तथा आश्विन मास में की जाती है। सम्पूर्ण नवरात्रि में देवी के नौ रूपों की आराधना की जाती है। यह नौ रूप क्रमशः शैल पुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कुष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायिनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदात्री होते हैं।

माँ दुर्गा का प्रादुर्भाव शक्ति स्वरूप में माना गया है। इससे सम्बन्धित कथा मे असुर महिषासुर का वध करने के लिये विष्णु और शंकर के तेज से दुर्गा जी का जन्म हुआ फिर उन्होंने महिषासुर का वध किया।

जवारे

बसन्त/वासन्ती नवरात्रि में दुर्गा का अनुष्ठान है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक होता है। इसमें महिलाएं पुरुष और कुछ बच्चे भी दुर्गा जी का 9 दिन तक व्रत पूजा और जल ढारती / ऊपर से डालती हैं। नव दुर्गा में प्रतिपदा के दिन नए घट को चंदन से लेपकर हल्दी रोली से अलन्कृत कर स्थापित किया जाता है। मिट्टी की वेदी बनाकर उसमें गेहूँ और जौ के बीज बो दिये जाते हैं। बुन्देलखण्ड में इन्हें जवारे कहते हैं। यह मिट्टी के खप्परों में या मिट्टी के बर्तनों में बोये जाते हैं। यह धरती की उर्वरा शक्ति के द्योतक हैं। जवारे की पूजा प्रतिदिन देवी की तरह पूर्ण भक्ति के साथ करते हैं।घट में हरे पत्ते, जल, दूध, पंच पल्लव, पंचरत्न, डालकर ऊपर से गेहूँ व जौ से भरा पात्र ढक देते हैं। उस पर लाल कपड़े में नारियल लपेट कर रख देते हैं। प्रतिदिन दुर्गा माँ की आराधना की जाती है। दुर्गा अष्टमी को बुन्देलखण्ड में दुर्गा जी का चित्रान्कन भित्ति पर किया जाता है।

नवमी को मां की शोभायात्रा निकालते हैं जिसमें जवारे आगे आगे चलते हैं। शोभायात्रा में घर का मुखिया, पूजा का थाल लेकर, आगे आगे चलता है। शोभायात्रा में, पीछे एक व्यक्ति गाल में सांग फंसा कर चलता है। यह त्रिशूल की 9 फिट तक लम्बी छड़ होती है। त्रिशूल के बीच वाले कांटे को काफी लंबा बनाया जाता है ताकि उसे गाल में आर पार किया जा सके। यह एक बड़ी लोहे की छड़ का अग्रभाग होता है। इसकी लंबाई 2 फुट से लेकर 10 फुट तक होती है और लंबाई अधिक होने के कारण कुछ लोग पूरी सांग को ऊपर उठा कर चलते हैं। साथ में चलने वाले पुरुष और महिलाएं मां की ''अचरी'' जाती हैं। अधिकान्श परिवारों में महिलाएं और पुरुष पूरे नवरात्र व्रत रखते हैं। बालिकाएं तथा महिलाएं नंगे पैर, पैदल चलकर, देवी मन्दिरों में माता को पानी चढ़ाने /माता धारने जाती हैं। सुहागिनों तथा कन्याओं को यथा योग्य भोजन कराया जाता है। देवी मन्दिरों पर मेले लगते हैं।

भित्ति चित्रान्कन के लिये सिन्दूर या रोली को घी में घोल लेते हैं, जिससे दीवार पर सिन्दूर का स्थायित्व बढ़ जाये। इस घोल से एक पुतरिया बनाते हैं तथा माँ दुर्गा का शक्ति प्रतीक त्रिशूल भी बनाया जाता है। माँ दुर्गा की चित्रित छवि को कभी–कभी कपड़े से निर्मित लहंगा चुनरी से सुसज्जित भी कर देते हैं।

दुर्गा जी के समक्ष अठवाई, खीर, हलुआ आदि बनाकर प्रसाद के निमित्त रखते हैं। देवी के पूजन की पूर्णता विभिन्न सामग्रियों को अर्पित करने से मानी जाती है। जो लोग नौ दिन का अनुष्ठान करते हैं, उन्हें नियमों का कड़ाई से पालन करना होता है। देवी की पूजा में– रोली, अक्षत, फूल, गन्ध, सुपारी, पान, तिल, आठ तरह का तेल(तिल, सरसों, अलसी, ...), गंगाजल, नारियल का पानी, गन्ने का रस, शहद, दही, दूध, घी आदि प्रयोग करने का प्रावधान है। किन्तु भगवान भाव के भूखे होते हैं तथा दुर्गा जी हमारी माता हैं, वे सदा भक्तों को बालक जान कर क्षमा करती हैं। यह लोक विश्वास धनी व निर्धन सभी को दुर्गा अष्टमी का पूजन करने का अधिकार देता है।

प्रसाद के आठ कौरा बनते हैं, नारियल फोड़ा जांता है। कन्या जिमाई(भोजन कराना) जाती है। नवरात्रि में बोये गये जवारे आगामी फसल की स्थिति दर्शाते हैं। जवारे सिराने से पहले खोट कर देवी के मन्दिर पर चढ़ाये जाते हैं और सबको बाँटे जाते हैं यह सुख, सौभाग्य और शान्ति के प्रतीक माने जाते हैं। जवारे की शोभा यात्रा में कोई भक्त शरीर के किसी अंग(जीभ, गाल, बांह आदि) में लोहे की सांग (शलाका) बेध लेता है किन्तु रक्त एक बूँद नहीं निकलता। इसे माँ का प्रताप माना जाता है। शुभ कार्यों हेतु नवरात्रि के सभी दिन शुभ माने जाते हैं। इन तिथियों में विवाह, सगाई इत्यादि किये जाते हैं।

41 साँझी

साँझी, श्राद्ध पक्ष में आश्विन कृष्ण पक्ष में भूमि पर चित्रांकित की जाती है। प्रथम दस दिन गोबर व फूलों से सजाई जाती है और शेष पाँच दिन रंगों से बनाई जाती है। यह वास्तव में ब्रज का लोक–चित्रान्कन है किन्तु बुन्देलखण्ड का कुछ भू–भाग विशेषतया दतिया, ब्रज क्षेत्र से सर्वाधिक प्रभावित रहा है। इस कारण वहाँ साँझी का चित्रान्कन देखने को मिल जाता है। जब कोई लोक–कला एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित होती है तब उसका लोक रूप परिवर्तित हो जाता है। इसी तरह साँझी भी परिवर्तित रूप में पाई जाती है। सान्ध्य बेला में चित्रान्कन करने के फलस्वरूप इसे साँझी कहते हैं।

मान्यता यह है कि श्राद्ध पक्ष में हरियाली हो जाती है। कृष्ण गाय चराने जंगल जाते थे। सन्ध्या को जब वे वापस लौटते थे तब गोपियाँ उनके मार्ग में फूल बिछा देती थीं। उसी परम्परा को लोक मान्यता मिल जाने पर घर–घर साँझी सजाई जाने लगी। बुन्देलखण्ड में पुराने समय में साँझी का चित्रान्कन करने के लिये एक चौकोर सीढ़ी युक्त मिट्टी का चबूतरा बनाकर इसके पास मिट्टी की दो दीवारों से यमुना नदी बनाते हैं। उसमें पानी भर दिया जाता है। मिट्टी के चबूतरे पर साँझी चित्रान्कन किया जाता है। इसमें फूल–पत्ती बेल की अलन्कारिक आकृतियों के साथ कुछ विशेष चित्र जैसे– अमावस्या पर पाँच चपेटे, प्रतिपदा को एक पटा, द्वितीया को दो पन्खे, तृतीया को एक दूसरे के भीतर रखे तीन कटोरे, चतुर्थी को चौपड़, पंचमी को पाँच कटोरे, षष्ठी को छः पन्खुड़ी का फूल, सप्तमी को सांतिया आदि अलग–अलग आकृतियाँ भी प्रतिदिन बनाई जाती हैं। दतिया में कागजी साँचों से भी साँझी तैयार की जाती हैं। दूधिया पत्थर से सफेद रंग बनाते हैं। सफेद चूर्ण में नीला–पीला रंग मिला देते हैं। खसकीला पत्थर को घिस कर पीला रंग प्राप्त करते हैं। चील बट्टा पत्थर का रंग खैर जैसा लाल–काला होता है। धीरे–धीरे तैयार रंगो का प्रयोग भी किया जाने लगा है। साँझी कला का प्रदर्शन अन्य प्रकार से भी होता है। परातों में पानी भरकर उस पर पिसी सेल खड़िया की पर्त धीरे से डालकर उस पर कागजी सांचो से रंग बिछाकर सुन्दर साँझी तैयार की जाती है। इसी प्रकार परात की तह में तैलीय रंगों से साँझी चित्रण कर सूखने पर ऊपर से पानी भर देते हैं। वर्तमान में बुन्देलखण्ड के कुछ भागों में ही साँझी बनाई जाती है।

42 महालक्ष्मी

यह क्वॉर/आश्विन माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को होती है। यह व्रत भी सौभाग्यवती व पुत्रवती स्त्रियां ही करती हैं। इस पर्व में महालक्ष्मी के साथ–साथ हाथी की भी पूजा होती है। आज के दिन विशेष प्रकार का पकवान बनाया जाता है। जिसको ''सुरा/ठठेरा'' कहते है। आज के दिन जलाशय में स्नान विशेष का महत्व हैं। सोलह बार स्नान कर सोलह बार सुरा खाकर, पूजा करनी होती है। ऐरावत हाथी "काली मिट्टी" का बनाया जाता है। इसके ऊपर महालक्ष्मी तथा राजारानी की सवारी बनाई जाती हैं।

43 मामुलिया/महबुलिया

यह क्वॉर/अश्विन माह के कृष्ण पक्ष में कन्याओं का एक सुन्दर त्यौहार है। इस क्षेत्र में यह मामुलिया के नाम से प्रसिद्ध है।

क्वार मास के पितृ पक्ष में, परेवा/पूर्णिमा से लेकर अमस्या /अमावस्या तक लड़कियां मामुलिया खेलती हैं।

खेलने की प्रथा/रीत बुन्देलखण्ड में अति प्राचीन काल से है। बुन्देलखण्ड का प्राचीन लोक पर्व महबुलिया शुरू होते ही गान्व में बच्चियां बबूल के कांटेदार डाल को जमीन में गाड़ा जाता है, वहां चौक पूरी जाती है, तरह–तरह के रंग–बिरंगे फूल चुनकर कांटेदार झाड पर सजाने शुरू कर देती है। चने की गीली दाल व गुड का प्रसाद बांटा जाता है। इस पर्व की शुरुआत से ही बच्चियों अपना–अपना समूह बना लेती हैं और शाम की बेला पर महबुलिया सजने लगती हैं। इसके लिए दिनभर गान्व व जंगलों में तरह–तरह के रंग–बिरंगे फूल चुनकर लाती हैं, छोटे भाई भी इसमें उनका सहयोग करते हैं। थालियों में फूल सजाकर महबुलिया के स्थान पर पहुंचकर कांटे की झाड़ या बबूल की झाड़ में फूलों को पिरो देती हैं। उसकी पूजा अर्चना कर अन्त में गान्व के तालाब या पोखरो में विसर्जित कर देती हैं।

इस त्यौहार में अविवाहित लड़कियां बेर वृक्ष की डाली को पुष्पों से सजा संवार कर पुरा, पड़ोसियों के द्वार पर जा कर प्रदर्शन करती हुई निम्न गीत गाती है। प्रचलित लोक गीत कुछ इस प्रकार का है।:–

ल्याओ – ल्याओ, चम्पा चमेली के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया।
मामुलिया के आए लिवौआ, झमक चली मोरी मामुलिया।।
हमार मामुलिया के आइल लिबौआ, झमक चली मोरी मामुलिया।
जितै आजुल के बाग, उतै मोरी मामुलिया।
रानी आजी देखन आई बाग, सजाय ल्याई मोरी मामुलिया।
ल्याऔ चंपा चमेली के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया

मामुलिया के आइल लिबौआ
ल्याऔ घिया तुरैया के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया।
जिते जिते, रानी भावी, मामुलिया के आइल लिबौआ
ल्याऔ चम्पा चमेली के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया।
जिते जिते वीरन जू के बाग, उतै मोरी मामुलिया।
रानी भावी देखन आई बाग, सजाय ल्याई मोरी मामुलिया।
मामुलिया के आइल लिबौआ
ल्याऔ चंपा चमेली के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया
मामुलिया के आइल लिबौआ ।

उपहार में बालिकाओं को जो कुछ पैसे या अन्न प्राप्त होता है, उन पैसों या अन्न से कोई भी खाने की वस्तु खरीद कर आपस में मिल बाँट कर खा लेती है।

पितृपक्ष में मनाया जाने वाला यह त्योहार छोटी बच्चियों व लड़कों में काफी उत्साह से मनाया जाता है। विकास के रास्ते में इस तरह के पर्वों का कोई उपयोग नहीं होता है अतः यह भी कुछ क्षेत्रों में सिमट कर रह गया है। लोक कथा है और बुजुर्गों का कहना है कि इस पर्व को मानने व मनाने से, जिन पुरुषों का तर्पण नहीं हो पाता, बच्चियों की श्रद्धा से उन्हें मोक्ष मिल जाता है, उनका तर्पण हो जाता है।

44 उरैन

"उरैन" का शाब्दिक अर्थ है उर (ह्रदय) मे रैन (रहना) अर्थात् हदय में रहना। प्रातःकाल घर के मुख्य द्वार की भूमि को गोबर और थोड़ी मिट्टी मिलाकर लीपते हैं। यह लिपाई चौकोर आकार में करते हैं। उंगलियों के पोरों की सहायता से उस चौकोर आकार के चारों कोनों को थोड़ा सा बाहर निकाल देते हैं। महिलायें सुन्दरता की दृष्टि से कभी–कभी उरैन के चारो ओर गोबर से ही गोलाकार या आड़ी तिरछी रेखाओं से सुसज्जित कर देती हैं। उस लीपे

हुये स्थान पर आटे या सूखे रंगों से चौक बनाये जाते हैं। श्राद्ध पक्ष या पितृपक्ष में प्रतिदिन उरैन डालना आवश्यक होता है। इसके पीछे यह भावना रहती है कि क्वार मास कृष्ण पक्ष में स्वर्ग से पितरों का आगमन पृथ्वी लोक पर होता है। उनके लिये यह उरैन स्वागत का प्रतीक माना जाता है। पितृ पक्ष में बनाये गये उरैन में, पितृ आगमन के प्रतीक चित्र बनाने की परम्परा है। बुन्देलखण्ड में पितृ पक्ष को ''कनागत''(कर्णागत) भी कहा जाता है। कर्णागत अर्थात् कर्ण का आना या कर्ण आये। इसी सम्बन्ध में कथा भी प्रचलित है। यथा–

कुन्ती ने कुवारेपन में सूर्य द्वारा एक पुत्र को जन्म दिया था जिसके शरीर पर स्वर्ण का कवच एवम् कानों में कुण्डल थे। कुन्ती उस समय कौंतार–चेदि प्रदेश में थी उन्होंने पुत्र को सान्सरिक लाज–वश नदी में बहा दिया। कालान्तर में वही पुत्र दानवीर कर्ण के नाम से विख्यात हुआ। वह प्रतिदिन पूजन के बाद स्वर्णदान किया करते थे। महाभारत युद्ध में वे कौरवों के सेनापति बने। कुन्ती ने अपने पांडव पुत्रों में सबसे प्रिय अर्जुन के प्राणों की रक्षा हेतु कर्ण से वचन लिया। जिसका पालन करते हुए रणभूमि में कर्ण की मृत्यु हो गई। मृत्यु से पूर्व उसने अपने दान देने की परम्परा बनाये रखते हुए अपने दान्तो में लगे स्वर्ण को भी दान कर दिया। मृत्यु के बाद जब कर्ण देव लोक गये वहाँ उन्हें भोजन के स्थान पर स्वर्ण खाने को दिया गया। उन्होंने जब अन्न मान्गा तो उनसे कहा गया कि पृथ्वी लोक पर तुमने केवल स्वर्ण ही दान किया है इस कारण तुम्हें स्वर्ण ही यहाँ मिलेगा। यदि अन्न दान करते तो अन्न प्राप्त करने के अधिकारी होते। यह जानकर कर्ण ने ईश्वर की कृपा से क्वार मास के पितृपक्ष में पुनः पृथ्वी पर आकर पन्द्रह दिनो तक अन्न दान दिया जिससे उन्हें स्वर्ग लोक में समस्त सुखों की प्राप्ति हुई।

इसी कथा के आधार कनागत में दान–कर्म करने की परम्परा है। प्रत्येक परिवार में पितृों की स्मृति में मृत्यु की तिथि पर ब्राम्हण को भोजन कराने की परम्परा है। मनुष्य के साथ गाय और कुत्ते को भी ग्रास दिया जाता है तथा कौए को आवाज देकर ''कागौर'' देते है अर्थात् इन दिनों पितृों की आत्मा की शान्ति हेतु दान–पुण्य किया जाता है। पशु–पक्षियों में पितृ रूप मानकर भोजन कराते हैं। यह ''करयै'' अर्थात् कड़वे दिन कहलाते हैं। इन दिनों शुभ कार्य आदि नहीं किये जाते बल्कि विवाहादि की चर्चा, सम्बन्ध तय करना भी निषेध है।

उरैन मान्गलिक अवसरों पर भी डाले जाते है किन्तु उस समय पितृों के चरण नहीं बनाए जाते है।

45 गोधन

गोधन अर्थात् गो–धन या गौ–वर्धन। यह बुन्देली सन्स्कृति में अत्यन्त महत्वपूर्ण चित्रान्कन है। इसके शाब्दिक अर्थ के अनुसार गाय धन के समान होती है अर्थात् गायों(पशुओं) की सन्ख्या बढ़े, इस भाव से पूजन होता है।

दीपावली के दूसरे दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोधन की पूजा की जाती है। वैसे तो इस त्योहार का पौराणिक महत्व ब्रज से सम्बंधित है, किन्तु बुन्देलखण्ड कृषि प्रधान तथा पशुपालन क्षेत्र होने के कारण इसका महत्व यहाँ भी समान रूप से स्वीकार्य है।

कृषि कार्य सदैव वर्षा पर आधारित रहता हैं, इसी भावना से श्री कृष्ण के अवतरण के समय तक देव इन्द्र जो कि वर्षा के देवता माने जाते हैं, उनकी पूजा का विधान था। इन्द्र को प्रसन्न करने हेतु यज्ञ कराये जाते थे।

सम्बन्ध में कथा प्रचलित है– एक बार श्री कृष्ण ने सम्पूर्ण ब्रज को पूजा तथा यज्ञ की तैयारी करते देखा। उन्होंने पूछा तब पता चला कि वे वर्षा के देवता भगवान इन्द्र को प्रसन्न करने हेतु यज्ञ व पूजन करने की तैयारी कर रहे हैं। यज्ञ में गौ–बलि भी दी जाती है, यह जानकर श्री कृष्ण ने पूजन रूकवा दिया। इससे क्रुद्ध होकर इन्द्र ने अति–वृष्टि की जिससे सम्पूर्ण ब्रज त्राहि–त्राहि करने लगा। सब श्री कृष्ण से सहायता की गुहार करने लगे। श्री कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को अपनी कनिष्ठ उंगली पर उठाकर छतरी समान बना दिया जिसके नीचे सम्पूर्ण ब्रजवासियों, पशुओं आदि ने शरण ली। तब से ब्रज में गोवर्धन पर्वत की महत्ता बढ़ गई। ब्रजवासी इन्द्र की पूजा छोड़कर गोवर्धन पर्वत की पूजा करने लगे। गाय का वध करना समाप्त हुआ, उसे भी पूज्य माना जाने लगा।

कालान्तर में पर्वत व श्री कृष्ण के प्रतीकात्मक चित्र की गोबर द्वारा रचना कर पूजा की जाने लगी। बुन्देलखण्ड में भूमि को गोबर से लीपकर उस पर गोबर की सहायता से चौकोर आकार में हल्की उभरी चार–दीवारी बना लेते है। नीचे की ओर द्वार बना देते हैं। उस चौखानें में कृष्ण–बलराम की एकाकार आकृति बनाई जाती है। एकाकार से तात्पर्य यह है कि एक धड़, दो सिर, दो हाथ तथा दो पैर बनाते हैं। आकृति के पेट में एक गड्ढा बनाया जाता है। आकृति के ऊपर वाले भाग में गोवर्धन पर्वत बनाते हैं। आस–पास गाय–बछड़े, बरेदी(गाय चराने वाला), दूध–दही बेचने वाली आदि बनाते हैं। चौखाने के चारों कोनों में अर्धवृत्ताकार सीमा रेखायें बनाकर कोठे बना दिये जाते

हैं। कुछ लोग कृष्ण बलराम के दो पुतले अलग–अलग या केवल कृष्ण का पुतला ही बनाते हैं। किन्तु एकाकार आकृति अधिक बनाई जाती है। पूजन विधान में चारों कोठों मे ंखील, लाई, बताशा तथा अनाज भर दिया जाता है। तत्पश्चात दूध–चावल या खीर बनाकर प्रसाद स्वरूप कृष्ण–बलराम की एकाकार आकृति के पेट में बने गड्ढे में भर देते हैं। कहीं कहीं कढ़ी–चावल भरने का रिवाज भी है। घर के पुरूष यह पूजा करते हैं। गोधन के चारों और पाँच या सात गगरी रखी जाती है जो कलश कहलाती है। उन कलशों में पकवान डाल दिये जाते हैं। पूजा में मथानी भी रखी जाती है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में यह पूजा होती है, किन्तु चित्रण या पूजन विधान में थोड़ी भिन्नता प्राप्त होती है। भिन्नता होने पर भी भाव एक समान होते हैं। कार्तिक प्रतिपदा को दिवारी नृत्य भी किया जाता है। अहीर जाति के युवक ही यह नृत्य करते हैं। वे कमर में फूँदनादार करधनी, बंडी तथा रंग–बिरंगे जांघिया पहनते हैं। प्रमुख नर्तक हाथ में मोर पन्ख के मूठ(गड्डी) लेकर नृत्य करते हैं। वे कमर में झेला (घुघरू) बांधते हैं।

46 भैया दोज

भैया दोज का पर्व कार्तिक माह की शुक्ल पक्ष की द्वितीया को मनाया जाता है। इस पूजन में द्वार पर दोनों तरफ गोबर की छोटी–छोटी मूर्तियाँ स्थापित की जाती है। इनमें कृषक जीवन से सम्बन्धित मूर्तियाँ बना कर स्थापित की जाती है। इसके पश्चात स्त्रियां विधिवत पूजन करके मूर्ति स्थापित करती है। भाई, बहन के घर जाकर भोजन ग्रहण करता है। भाई, बहन से टीका करवा कर, कुछ उपहार देकर, अपने घर वापिस लौट आता है।

दिवारी का गाना बजाना पांचों दिन अर्थात 1 धनतेरस, 2 नरक चतुर्दशी, 3 दिवाली, व 4 जमघट, 5 गोवर्धन तक चलता ही रहता है। और कभी कभी भैया दूज को भी चलता ही रहता है।

47 गोपाल अष्टमी

यह पर्व कार्तिक माह की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को मनाते है। इसमें गाय की पूजा की जाती है।

48 इच्छा नौमी

यह पर्व कार्तिक माह की शुक्ल पक्ष की नवमी/नौमी को मनाया जाता है। इस दिन स्त्रीयाँ आँवले के वृक्ष के समीप जाकर पूजन कर उसकी छाया में परिजनों के साथ भोजन करती है। प्राचीन मान्यता है जो व्यक्ति इच्छा नौमी के दिन आँवलें के वृक्ष के नीचे भोजन कर, मन में जो भी इच्छा करते है, वह पूर्ण होती है। आज के दिन से ही आँवला खाना प्रारम्भ होता है।

49 देवोत्थान एकादशी/देवोत्थानी एकादशी

यह पर्व कार्तिक माह की शुक्ल पक्ष की एकादशी को मनाया जाता है। चतुर्दशी को महादेव शंकर का उत्सव मनाया जाता है। इस पर्व पर घर के आन्गन में रात्रि को ईख की झोपड़ी बनाकर उसमें भगवान की पूजा के बाद धान डालकर परिक्रमा लगाते हैं। इस त्यौहार के पश्चात् सारे शुभ कार्य शुरू होने लगते है।

गया गदाहार प्रयाग माधव, उठो देव तुव वारे आये
क्वारिन के ब्याह कराओ, विवहिन(विवाहित) के चलाव कराओ।

इसे बुन्देलखण्ड में "देवठान" के नाम जाना जाता है। एकादशी व्रत धार्मिक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण और फलदायक माना जाता है। एकादशी व्रत की महिमा स्कन्द पुराण, मारकन्डेय पुराण तथा पद्म पुराण में वर्णित है। महाभारत में भी कहा गया है कि एकादशी व्रत सभी इच्छित मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला व्रत होता है। इस व्रत के नियम भी होते है। वैसे तो एकादशी व्रत निर्जला रहना शुभ माना जाता है किन्तु यदि न रह सके तो फलाहार के साथ भी रहा जा सकता है। देवठान एकादशी का महात्म्य सर्वाधिक माना गया है। इसे प्रबोधनी एकादशी के नाम से जाना जाता है क्योंकि इस दिन को भगवान विष्णु का देवशयनी एकादशी के पश्चात् सोकर उठने का जागरण काल माना गया है। इसके सम्बन्ध में यह कथा है कि – विष्णु भगवान देवशयनी एकादशी पर पाताल लोक में विश्राम हेतु चले जाते हैं। इस बीच वे सान्सरिक व्यक्तियों की पूजा स्वीकार नहीं करते हैं। किन्तु "देवठान एकादशी" पर जब पाताल पुरी से वापस आते हैं, तब पूजा स्वीकार करते हैं।

कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष ग्यारस(एकादशी) को देवठान एकादशी मनाई जाती है। इस दिन आन्गन की भूमि को गोबर से लीप कर उस पर गेरू, चूने या आटे से चतुर्भुजी चौक पूरी जाती है। उसके मध्य में प्रभु चरण बनाये जाते हैं। उस निश्चित आकार की चौक को महिलायें इच्छानुसार कलात्मक रूप से जितना बढ़ाना चाहती हैं, बढ़ा देती हैं। घर के मुख्य द्वार की ड्योढ़ी, अन्य कमरों तथा पूजागृह की ड्योढ़ी पर भी अनेक कलात्मक भूमि चित्रण किये जाते हैं। इनका अर्थ सामान्य रूप से यही माना जाता है कि भगवान घर के प्रत्येक स्थान पर शुभागमन करें। कहीं–कहीं पूजागृह से चौक तक प्रभु चरण बनाये जाते हैं। देवठान का पूजन सान्ध्य बेला के पश्चात् किया जाता है। चौक के ऊपर गन्ने का मंडप बनाया जाता है। आन्गन में बनी चौक पर पूजागृह से भगवान लाकर बिठाये जाते हैं। भगवान को नवीन वस्त्र धारण कराके परिवार के सभी सदस्य क्रम से इसकी पूजा करते हैं। नवीन फसल के गन्ने, भाजी, मूंग की कौंसे(फलियाँ), बेर, शकरकन्द, सिन्घाड़ा, कचरियाँ इत्यादि चढ़ाये जाते हैं। भगवान के नये बिस्तर (गद्दा, तकिया, रजाई) ऋतु अनुकूल बनाकर समर्पित किये जाते हैं। सर्दी का आगमन होने पर ईश्वर को प्रथम समर्पित कर इन वस्तुओं का उपभोग हम करें, इसी भावना से पूजन किया जाता है। पूजन के पश्चात् चौक की परिक्रमा देने की परम्परा है। परिवार के वरिष्ठ जन भगवान का सिन्हासन या पटा उठा कर झूले के समान झुलाते हैं और कहते हैं–

उठो देव, उठो देव,   क्वॉरन के ब्याव होंय,   ब्याहतन के चलाय हौय।

देवठान से शुभ दिन प्रारम्भ, माने जाते हैं। घर में विवाह, चलाव(गौना) आदि शुभ कार्यक्रम प्रारम्भ होने लगते हैं। इस सम्बन्ध में यह भी लोक–विश्वास है कि जिनका विवाह नहीं हो रहा हो, वे दूसरे दिन प्रात–काल इस चौक पर मौन धारण कर बैठ जायें तो उनका विवाह शीघ्र हो जाता है। छोटे बच्चों को चौक पर चलाया जाता है जिससे ऐसा विश्वास है कि बच्चों के पैरों में मजबूती आती है, उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है। पुत्र प्राप्ति हेतु भी देवठान एकादशी का व्रत व पूजन करना चाहिये ऐसी आम धारणा है।

पुराणों में कहा गया है कि पाप रूपी घास–फूस को नष्ट करने के लिये एकादशी महात्म्य है। इसी भाव से जलती घास को पहले भगवान के आसन के चारों ओर फिराते हैं तत्पश्चात् उसी जलती घास को अपने तथा परिवार–जनों पर फिराया जाता है। घास का पूला (गड्डा) फेरते समय कहते जाते हैं –

औध नई, बोध नई, तेली कौ तेल नऔ।
छीपी की सूज नई, नाऊ की मसाल नई।
नौनी–नौनी सबई भई, दाद जाय खाज जाय।

अर्थात्, शुभ कार्यों हेतु वर्ष नया और बुद्धि नई हो। तेली के यहाँ नया तेल हो, छीपी /दर्जी की सुई नई हो, नाऊ की मशाल नई हो। शरीर की व्याधियाँ दाद–खाज नष्ट हो जिससे शरीर स्वस्थ हो।

देवठान की पूजा परिवार के मंगल तथा स्वास्थ्य कामना से की जाती है। जिसके यहाँ पूजा में गन्ने या ईख की खेती होती है, वे इस दिन खेतों मे जाकर गन्ने की पूजा करते हैं। इस दिन गन्ने चूसना आवश्यक समझा जाता है। वर्तमान में दाँतों की मजबूती और स्वच्छता हेतु गन्ना चूसने को महत्व देते हैं। लोग प्रातःकाल अपने पशुओं को गेरु आदि से दीपकों के ठप्पे से सजाते हैं। रस्सियाँ बदलते हैं, सींग रंगते हैं।

पूरे वर्ष भर प्रत्येक माह में दो एकादशी पड़ती हैं। बुन्देली में इन्हें ग्यारस(ग्यारहवीं तिथि) कहा जाता है। किन्तु देवठान ग्यारस का महत्व इन सबसे विशेष है। शेष 23 एकादशियाँ निम्न है।

1 भीमसेनी,	2 योगिनी,	3 देवशयनी,	4 कामिका,	5 पुत्रदा,	6 अजिता,
7 वावन/परिवर्तनी,	8 इन्दिरा,	9 पापाकुशा,	10 रमा,	11 वैतरणी,	12 मोक्षदा,
13 सफला,	14 षटतिला,	15 जया,	16 विजया,	17 आमलकी,	18पापमोचनी
19 कामदा,	20 बरूथनी,	21 मोहिनी,	22 पदमश्री	23 परमा	

देवठान पर किया गया भूमि चित्रान्कन तथा घरों में पूजन विधान विशेष होता है।

50 करवा चौथ

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

सभी हिन्दू जाति की सुहागिन स्त्रियों के लिये यह सुहाग रक्षा का महत्वपूर्ण व्रत है। यह प्रत्येक कार्तिक मास मे कृष्णपक्ष की चतुर्थी को मनाया जाता है।

महाभारत में वर्णित एक कथा के अनुसार द्रोपदी ने कृष्ण से पूछा कि, अर्जुन एक अनुष्ठान करना चाहते है। वह निर्विध्न सम्पन्न हो इसके लिये मै क्या करूँ? कृष्ण ने बताया कि, भगवान शिव और पार्वती एक बार पृथ्वी लोक का विचरण कर रहे थे, तब उन्होने देखा कि, तालाब व नदी सूखे हैं, वृक्ष पर सड़े फल लगे हैं। गाय व बछड़ा अलग–अलग हो गये हैं। सृष्टि की यह दुर्गति देखकर पार्वती जी दुःखी हो गईं उन्होने भगवान शिव से प्रकृति को ठीक करने की प्रार्थना की। तब शिव जी ने कहा यह सब कार्तिक चौथ का व्रत न रखने के कारण हुआ है। पार्वती ने वचन दिया कि वे व्रत रहेंगी। प्रकृति ठीक हो गई, किन्तु पार्वती जी व्रत रखना भूल गई। इस प्रकार कई साल बीत गये। शिव जी के पूछने पर वे झूठ बोली कि उनका व्रत हैं। शिव जी अर्न्तयामी थे सब समझ गये। तब पार्वती ने क्षमा मान्गी और व्रत रखना प्रारम्भ किया। तब भगवान शंकर ने कहा तुम यह व्रत सन्सार मे बांट दो जिससे सुहागिन स्त्रियों के सौभाग्य मे वृद्धि होगी। इस प्रकार सन्सार मे करवा चौथ जैसा उत्तम फलदायी व्रत रखा जाने लगा। द्रोपदी ने कृष्ण के बताये अनुसार यह व्रत रखा जिससे अर्जुन का अनुष्ठान निर्विध्न सम्पन्न हुआ।

बुन्देलखण्ड मे करवा चौथ का भित्ति चित्रण किया जाता है। दीवार पर गाय के गोबर से चौरस लीपते हैं। चावल को पीस कर उसके घोल से लकड़ी के अग्र भाग मे रूई लपेट कर भित्ति चित्रण किया जाता है। यह चित्रण करने मे स्त्रियों को बहुत समय लगता है। इस कारण पर्व के नौ दिन पूर्व अर्थात दशहरे वाले दिन से चित्रण प्रारम्भ कर दिया जाता है। इसके मध्य मे पार्वती का स्वरूप मुख्य होता है। उनका सीढ़ीदार लहंगा बनाया जाता है। दाँये बाँये सूरज–चन्दा, श्री गणेश, कार्तिकेय, शिव–पार्वती, राधा–कृष्ण, गंगा–जमुना, देवरानी–जेठानी, इमली के पेड़ पर से चलनी से दिया दिखाता भाई, सीढ़ी पर चढ़ी पूजा करती बहन, सिन्गार सामग्री, सर्प, धोबी–धोबन और कुम्हार–कुम्हारिन अपने बच्चों सहित, करवा आदि अनेक वस्तुयें चित्रित की जाती हैं। सम्पूर्ण चित्र का आधार कथात्मक होता है। चित्रण काल्पनिक तथा पारम्परिक होता है। बुन्देलखण्ड मे कुछ लोग चित्र मे दो गोलाकार आकृतियाँ बनाकर नीचे सीढीनुमा बना कर भी भित्ति चित्रण करते हैं। यह चित्र भी चारों ओर से रेखाओ द्वारा बन्द रहता है।

इस पूजा का विधान है कि स्त्रियाँ निर्जला व्रत रह कर भी, सभी तरह के पक्के – कच्चे पकवान बनाती हैं। पक्के(पूडी, कचौडी, सब्जी रायता, खीर आदि), कच्चे (रोटी, कढी, चावल, बरा, फरा आदि) व्यन्जनों के साथ कच्चे चावल और पिसी शक्कर की ‘‘पिठियाँ’’ भी कुछ घरों मे बनती हैं। सन्ध्या बेला मे स्त्रियाँ पूर्ण श्रृंगार करके भित्ति चित्रण के समक्ष धातु का करवा तथा मिट्टी का करवा भी रखती है उनमे पानी भर देती हैं। मिट्टी के करवा में पीली/ सरकण्डा की सींके लगाई जाती हैं। उस पर दीपक जलाकर रखते हैं। पूजन कर कथा भी कही जाती हैं। मिट्टी का करवा रखना परम आवश्यक है, क्योंकि इससे सम्बन्धित कथा यह है कि एक बार पार्वती जी चौथ पर पृथ्वी लोक पर आई और कहा मैं चार घड़ी चन्द्रमा रहने तक ही रहूँगी और जो स्त्रियाँ मेरी पूजा करेगी वे अमर सुहाग का वरदान पायेंगी। छोटी जाति की स्त्रियाँ झटपट मिट्टी के करवा लेकर उनमे बताशा का चूरा भरकर पार्वती जी के पास पहुँची और पूजा कर अखण्ड सौभाग्यवती का वरदान पाया। किन्तु उच्चकुलीन घर की स्त्रियाँ चाँदी–सोने के करवे मे पकवान भरकर पूर्ण श्रृगार करके पूजन हेतु पहुँची तब तक सुहाग बंट चुका था। स्त्रियों की अनुनय विनय से पार्वती जी ने अपने बाँये हाथ की, कनिष्ठिका काट कर सब पर छिड़ककर सुहाग दिया। जिसको जितना मिला उतनी ही लम्बी उम्र उसके सुहाग की हुई। इसी कारण स्त्रियाँ प्रतिवर्ष मिट्टी का करवा रखकर पूजा करती हैं और अपने पति की दीर्घयु की कामना गौरा जी से करती हैं। चन्द्रमा के उदय होने पर गौराजी के करवे से अपना करवा पाँच या सात बार बदला जाता है। चन्द्रमा को अर्ध्य दिया जाता है। तत्पश्चात् व्रत का पारायण प्रसाद खाकर किया जाता है।

करवा चौथ भित्ति चित्रण से सम्बन्धित एक लोक–कथा अत्यन्त प्रचलित है जिसे पूजा में भी कहा जाता है– एक जगह सात भाइयों की अकेली प्रिय बहन ‘‘सताना’’ थी। विवाह के बाद पहला करवा चौथ पड़ा, भाई, चौथ पूजन की सामग्री लेकर सताना के ससुराल गये। जब वे भोजन कर रहे थे तब उन्होने सताना से भी खाने का आग्रह किया किन्तु सताना ने व्रत के बारे मे बताया। भाई सताना का भूख से कुम्हलाया चेहरा देख कर दुःखी थे। बहन के प्रेम मे वशीभूत होकर छोटा भाई चलनी और दिया लेकर इमली के पेड पर चढ़ गया और दूसरे भाई ने कहा कि चन्द्रमा निकल आया। सताना को चलनी मे जलता दिया घने पेड़ से चन्द्रमा जैसा प्रतीत हुआ उसने चन्द्रमा को अर्घ्य देकर व्रत तोड़ दिया। भाई प्रसन्न होकर अपने घर लौट आये। जब चन्द्रमा निकला तब भाईयों की पत्नियों ने पूजा की। उधर सताना का व्रत खण्डित होने से उसके पति की मृत्यु हो गई। छोटे भाई ने पूजा वाली घटना अपनी पत्नी को बताई। पत्नी ने सताना से कहा– तुमसे करवा चौथ की पूजा मे चूक हुई है इस कारण तुम साल भर अपने पति का शव रखो और करवा चौथ पर नियमपूर्वक व्रत रहना, वे जीवित हो जायेंगे। सताना ने वैसा ही किया। गौरा जी की कृपा से सताना का पति जीवित हुआ।

इसी कथानुसार कुछ परिवारों मे भित्ति चित्र मे मृत पुतरा बनाते हैं। पूजन के बाद उसे जीवित पुतरे मे चित्रित कर बदल देते हैं। यह कथा थोड़े हेर फेर के साथ लगभग सभी स्थानों पर कही जाती है।

51 अहोई अष्टमी/अहोई आंठे

अहाई आठें, होईमाई की पूजा, बैमाता की पूजा और अन्य नामों से भी जाना जाता है। यह पुत्र प्राप्ति की कामना तथा पुत्र दीर्घायु हो, इस कामना से, व्रत रखा जाता है। माँ अपने पुत्र के लिये निर्जला व्रत रहती हैं। यह व्रत कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को पुत्रवती स्त्रियों द्वारा किया जाता है। यह पूजन "बैमाता"(भाग्य लिखने वाली देवी) का होता है। पुत्र दीर्घायु तथा सौभाग्यशाली भी हो, व्रत में ऐसी कामना भी रहती है। अहोई अष्टमी का व्रत चन्द्रमा को अर्घ्य देकर तोड़ा जाता है।

अहोई अष्टमी का भित्ति चित्र रंगीन बनता है। इसे घर मे प्राप्त सामग्री हल्दी, महावर, नील, गेरू, सिन्दूर, रज आदि से बनाया जाता है। इसमे अहोई माता की मातृत्व भाव का चित्रण किया जाता है। देवी का चित्रण स्त्री रूप मे किया जाता है। उनका शरीर या लहंगा आयताकार या चौकोर बनाते हैं, उसमें कथानुसार चित्रण किया जाता है। साहूकार, साहूकार की पत्नी उसके सात पुत्र, सात पुन्न /पुन्य वधुयें, धन धान्य से भरे पात्र, पशुधन चित्रित किये जाते हैं जो समृद्धशाली परिवार के प्रतीक होते है। चौकोर आकृति के बाहर गंगा, जमुना, तुलसी घरा, देवरानी–जेठानी, सूरज, चंदा इत्यादि चित्रित करते है। कुछ घरों मे यह सारे चित्र सूर्य–चन्द्रमा को छोड़कर देवी के शरीर आकृति चौखाने के भीतर ही चित्रित किये जाते हैं।

अहोई अष्टमी से सम्बन्धित अनेक कथायें है किन्तु ज्यादा प्रचलित कहानी यह है– किसी नगर मे एक साहूकार रहता था। उसकी पत्नी रूपवती एवम् गुणवती थी। उसके छः पुत्र हुये वे जन्म लेते ही मर गये। इस कारण साहूकार दम्पत्ति अत्यन्त दुःखी थे। एक बार वे जीवन से निराश होकर आत्महत्या करने गये किन्तु तभी आकाशवाणी हुई कि तुम इस प्रकार निराश न हो। यह तुम्हारे पूर्व जन्मों के पाप है। उन पापों को दूर करने के लिये और दीघार्यु पुत्र प्राप्त करने हेतु तुम कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी का व्रत रखो और श्रद्धापूर्वक अहोई माता का व्रत करो। वे दोनो प्रसन्नता पूर्वक घर लौट आये। साहूकार की पत्नी ने व्रत रख कर विधि विधान से पूजा की। अहोई माता की कृपा से उसे सुन्दर और स्वस्थ बालक प्राप्त हुआ। अहोई माता जब बच्चे का भाग्य लिखने हेतु प्रगट हुई तब साहूकार ने उनके स्वागत के लिये मेवा, मिष्ठान, दूध, दही इत्यादि पकवानों के कूंडे भर कर रखवा दिये। अहोई माता भोजन कर तृप्त हुई तथा बच्चे को दीर्घायु होने का वरदान दिया। तब साहूकार की पत्नी ने बच्चे को रूला दिया। अहोई माता ने पूछा कि– बच्चा क्यों रो रहा हैं? तो उसने जवाब दिया कि, अपने मृत भाइयों को जीवित चाहता है। अहोई माता साहूकार की पत्नी की होशियारी समझ गई किन्तु वचन देने के कारण उन्होने मृत पुत्रों को जीवन दान दिया। इस प्रकार वह सात पुत्रों की माँ बनीं।

अहोई अष्टमी के पूजन मे सभी प्रकार के मिष्ठान और कच्चे पक्के पकवान बनाकर पात्रों मे रख दिये जाते हैं। चित्र के समक्ष चौक पूर कर पूजन किया जाता है। कहानी कहीं जाती है। चन्द्रमा को अर्घ्य देकर स्त्रियाँ व्रत का पारायण करतीं हैं। अहोई माता का विधिवत् पूजन करने से और चन्द्रमा को अर्घ्य देने से पुत्रों की दीर्घायु होती है तथा प्रत्येक दुःखो से रक्षा होती है, ऐसा लोक विश्वास है।

52 धनतेरस(त्रयोदशी)

दिवाली से पहले दिन धनतेरस मनाई जाती है। शहरों में और गान्व में यद्यपि खरीदारी काफी मात्रा में होती है लेकिन दोनों जगह के रीति रिवाज अलग है। गान्व में कपड़ा, बर्तन, गाय, बैल, भैंस, चित्र, कैलेंडर आदि खरीदते है। उसी दिन शाम को ग्रामदेवता व मुख्य घर में धनतेरस दाई की पूजा होती है, जो कि वस्तुतः लक्ष्मी गणेश की ही पूजा है, लेकिन उसे धनतेरस ताई के नाम से पुकारते हैं। कुछ लोग मुख्यतः लक्ष्मी की पूजा करते हैं।

यह कार्तिक माह की कृष्ण पक्ष की तेरस/त्रयोदशी को मनाया जाता है। आज के दिन नवीन वस्तुओं खरीदना (ताम्बा, पीतल, स्टील के बर्तन व सोने, चाँदी के आभूषण) शुभ माना जाता है। धनतेरस के दिन यमराज और भगवान धनवन्तरि की पूजा का विशेष महत्व है। आज के दिन घर के द्वार पर घी के पाँच दीपक जला कर रखे जाते हैं।

धन तेरस के दिन लोक विश्वास है कि धन एकत्रित करने का शुभ मुहूर्त होता है। इस दिन सोना, चाँदी, सिक्के, आभूषण, पात्र इत्यादि क्रय करने की परम्परा है। रात्रि में खरीदे गये सामान को ईश्वर के समक्ष रखकर पूजा की जाती है, यह भौतिकता की पूजा होती है। इसीदिन आयुर्वेद के प्रवर्तक धनवन्तरि की जन्म जयन्ती भी मनाई जाती है। इस प्रकार यह भौतिकता एवम् शारीरिक स्वास्थ्य की उत्तमता हेतु मंगल कामना का त्यौहार बन जाता है।

53 नरक चौदस

कार्तिक माह की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी कहते हैं। इस दिन को छोटी दीवाली भी कहते हैं। चतुर्दशी का यह दिन उत्साह, उल्लास, श्रद्धा एवम् पवित्रता के साथ मनाया जाता है। इस दिन सरसों के तेल के चौदह दिये घर के विभिन्न भागों में रखकर जलाते हैं।

आज ही के दिन अर्द्धरात्रि को हनुमान जी का जन्म हुआ था। इसलिए आज ही के दिन हनुमान जयन्ती भी मनायी जाती है।

''नरक चौदस'' स्वच्छता का प्रतीक है। इस दिन घर की पूरी सफाई की जाती है। लिपाई पुताई होने के बाद, परिवारी जन स्नान कर ''अज्जा झारौ'' और ''करई तुमरिया'' को अपने ऊपर से उतारा करके घर के बाहर या पिछवाड़े फैंक देते हैं। इस सम्बन्ध में एक लोकोक्ति है –

अज्जाझारौ, करई तुमरिया, रोग–दोस लै जाय दिवरिया

यह एक प्रकार का टोटका लगता है या फिर पुराने समय में जड़ी बूटियों से स्नान कर स्वास्थ्य लाभ पाते होंगे, उसी का यह प्रतीकात्मक रूप है।

नरक चौदस के सम्बन्ध में कथा है– नरकासुर एक अत्याचारी असुर था। उससे समस्त देवगण परेशान थे। नरकासुर के कार्यों से समस्त ब्रह्माण्ड में बुराइयाँ व्याप्त हो गई थीं उसके आतंक का अन्त करने के लिये कृष्ण ने कार्तिक मास की चतुर्दशी को नरकासुर का वध किया। मृत्यु के समय नरकासुर ने कृष्ण से कहा कि मुझे वरदान दें कि मेरी मृत्यु तिथि समस्त लोक में मनाई जाये। कृष्ण के दिये वरदान–स्वरूप आज तक नरक चतुर्दशी के नाम से नरकासुर को याद किया जाता है। सभी को नरकासुर के आतंक से मुक्ति मिली इस कारण उसे उत्सव के रूप में मनाया जाने लगा। नरक चतुर्दशी को विशेष रूप से सफाई करना इसी बात का प्रतीक है कि समाज से बुराई अर्थात गंदगी का अन्त हुआ और अच्छाई अर्थात स्वच्छता का आगमन हुआ।

54 दीपावली/दिवारी

बुन्देली में इसे ''दिवारी'' कहा जाता है। शरद ऋतु में कार्तिक मास की अमावस्या को दीपावली का त्यौहार मनाया जाता है। फसल पक कर खलिहानों में आ चुकी होती है। भंडार भरे होते हैं, कृषक वर्ग अपने नियमित कृषि कार्यों से मुक्त हो जाते हैं, ऐसे में दिवारी एक महोत्सव के रूप में आती है। वैसे तो दीपावली सम्पूर्ण भारत वर्ष में मनाई जाती है, किन्तु इस दीपोत्सव का स्वरूप बुन्देलखण्ड में अनोखा है। यहाँ दिवारी लक्ष्मी आवाहन के साथ ओजपूर्ण दिवारी गायन एवम् नृत्य के लिये भी प्रसिद्ध है।

दिवाली के दिन प्रातः काल 4 बजे गान्व का डोमार ढोल लेकर निकलता है, ढोल बजाता हुआ पूरे गान्व का चक्कर काटकर गान्व के बीचो–बीच ग्राम देवी ''सन्कटा देवी'' के मन्दिर पहुंचता है। यह सूचक है कि यादव, अहीर या जो भी दिवारी गाते हैं, खेलते हैं, मन्दिर पहुंचे। दर्शक व दर्शनार्थी भी पहुंचे। प्रातः काल 5 बजे तक यहां इस तरह एक मेला सा लग जाता है। जब तक सब लोग नहीं आते तब तक दिवारी गाने वाले दिवारी गाते हैं और दिवारी नाचने वाले दिवारी नाचते है। सब लोगों के आने के बाद लठमार दिवारी होती है।

यह तीन प्रकार की है। सबसे पहले एक बड़ी लाठी से दिवारी खेली जाती है। इसमें एक व्यक्ति लाठी मारता है और दूसरा व्यक्ति उससे बचाव करता है। अब दूसरा व्यक्ति लाठी मारता है और पहला व्यक्ति उससे बचाव करता है और इस तरह से यह 1 घण्टे तक चलता रहता है। इसमें काफी लोग शामिल होते हैं। इसके खत्म होने पर दिवारी गीत व दिवारी नाच शुरू हो जाता है। कुछ देर इंतजार करने के बाद जब लोग लड़ने के लिए पुनः तैयार हो जाते हैं। अब दूसरी तरह की लड़ाई शुरू होती है इसमें छोटी लाठी से लड़ाई की जाती है। एक वार करता है दूसरा उससे

बचाव करता है इसे दोहरी दिवारी कहते हैं। यह भी 20–25 मिनट तक चलता है। यही लोग पुनः तैयार होने के लिए चले जाते हैं और बीच के समय में दिवारी गाई जाती है, नाच किया जाता है। अब तीसरी दिवारी का समय आता है इसे शैला या चांचर दिवारी कही जाती है। इसकी पोशाक विशिष्ट होती है जिस के कारण लोग विशेष रूप से तैयार हो कर आते हैं। इसमें जांघिया, बंडी और फुलझरा (यह कई रंग का लंबा कपड़ा जिसे कमर पर बान्धते हैं) कमरबन्द पहनकर नाचते हैं व दिवारी भी खेलते हैं। इसे लेट कर, बैठ कर, खड़े होकर, पिरामिड बनाकर खेला जाता है। यह एक तरह का डांडिया नृत्य की तरह का है। इसके बाद सभी लोग गीत गाते, नाचते हुए घर चले जाते हैं। अब समय है नहाने का। गाय बैलों को पास के तालाब में गहरे पानी में नहवाने के लिए लाते हैं व नहाते हैं। फिर गाय को विभिन्न रंगों में हुए कपड़ों से व रंगों से सजाते हैं जिसमें घाघर भी शामिल है। सोआर खेलाना– अब सूअर को बांधते हैं और रहुनिया(गान्व के जानवरों के इकठ्ठा होने का स्थान) में ले जाते हैं। उसी जगह अन्य गायों के साथ नई ब्याई /सद्यप्रसूता गाय को बछड़े के साथ लाते है। बछड़े को सूअर के पास ले जाते हैं। बछड़े को बचाने के लिए नई ब्याई /सद्यप्रसूता गाय सूअर को मारती है। इस प्रथा को सोआर खेलाना /सूअर खेलाना कहते हैं। बापू देवीदीन त्रिपाठी के अनुसार जिस समय मुसलमान राज्य था तब से यह परम्परा चली आई है। इसका मुख्य उद्देश्य गोवंश के द्वारा सूअर से छुआ देना था और उस समय सूअर से छुई गाय को मुसलमान नहीं काटते थे और इस तरह से गोवंश को बचाया गया। सूअर खिलाने के बाद गाय को घर में लाया जाता है। घर में गाय को पके हुए चने की दाल, चावल, रोटी, दही बड़ा, दोहान (मट्ठा में गुड़ को मिलाकर तैयार व्यन्जन) खिलाकर स्वागत करते हैं। बरेदी (गायों को किराए पर चराने के लिए जंगल में ले जाना वाला व्यक्ति) अब गायों को खेतों की तरफ ले जाते है और वहां किसी खड़ी भरपूर फसल में गायों को छोड़ देते हैं। कोई कोई अपने खेत को "अमान चरेगी" में छोड़ देते हैं और गायें उसी फसल में चली जाती हैं। इस खेत को पहले से तैयार किया जाता है ताकि उस में कोई, घुसने पर कोई पाबन्दी ना हो और गायें भरपूर खड़ी फसल को चरती हैं। एक तरह से यह उनकी दावत है।

मौन चराना

गान्व के कुछ लोग मौन चराते हैं। मौन चराना एक प्रथा है जिसके तहत गान्वों में होती हुई गोकशी को रोकना था। मौन चराने वाले 7 गान्वों में घूम कर आते थे। इसमें पुछार (मोर) के पन्खों का मुठा उठा कर, गुरु के साथ नदी में जाते हैं। मुठा को धोते है साथ ही उनके गुरु जो उनको मंत्र देता है, को भी अच्छी तरह प्रेम पूर्वक नहलाते हैं। इसे मुठा धोना और गुरु धोना कहते हैं। नदी से लौट कर आने के बाद व्रत में रहते हैं।

(दिवाली वाले दिन जुआ होता है, मौनिया नहाते हैं, गुरु धोना व मुठा धोना होता है। शाम को दाल, चावल, दोहान व अन्य व्यन्जन बनाते हैं, खाते हैं, दीपक जलाते हैं और लक्ष्मी गणेश की पूजा करते है।)

जमघट पर्व(परेवा)

अगले दिन जमघट पर्व पर, सोआर खेलाया जाता है, डोमार ढोल बजाते हुए दीवारी खेलने का आवाहन करता है अमान चराना होता है। मौनिया जब घर से निकलता है तो घर पर मां बहन उसकी आरती करती हैं। मौनिया मुठा के साथ नए कपड़े पहन कर देवस्थान पर मुठा लिए हुए जाते हैं, पूजा करते हैं, प्रसाद ग्रहण करते हैं। मौनिया दिवारी के नगाड़े के साथ नाच गाना करते हुए दोपहर को बछिया सजा कर लाते हैं। बछिया की पूजा करते हैं, परिक्रमा करते हैं और पून्छ को माथे पर लगाते हैं इसका अर्थ यह है कि बछिया दान कर दी। बछिया दान करना, मरने से पहले की एक प्रथा है। यह मान्यता है कि जब हम 7 गान्वों में जाएंगे और गायों को बचाएंगे, गोकशी नहीं होने देंगे, नहीं तो हम मरेंगे। गाय बचाने में मरना पड़े तो मरेंगे।

गुरु के साथ 7 गान्वों की सीमा पर जाकर सातों गान्वों की परिक्रमा करते हैं। सातों गान्व की देवी देवताओं की पूजा करते है। ढोल नगाड़े उनके साथ रहते हैं और यह इस समय व्रत में ही रहते हैं। जब सातों गान्व का परिक्रमा करने के पश्चात जब मौनी गान्व की सीमा पर आते है, तो सीमा पर उसकी मां बहन मौनिया की आरती उतारती है। दिन भर भूखा, प्यासा और मौन रहते हैं तो मां शरबत पिलाकर व्रत तोड़वाती है। यह लगभग 24 घण्टे या 2 दिन का व्रत है। अब मौनी घर जाकर तैयार होता है और मां पकवान बना कर खिलाती है।

दिवारी के साथ चार अन्य उत्सव भी सम्मिलित हैं दिवारी से दो दिन पूर्व धनतेरस उसके बाद नरक चौदस तथा दिवारी के बाद गोधन तथा दूसरे दिन भैया दूज मनाया जाता है।

कार्तिक अमावस्या का इतिहास श्रीराम की लंका विजय से भी जुड़ा है। इस दिन श्री राम लंका के राजा रावण का वध कर चौदह वर्ष बाद अयोध्या लौटे थे। उनका स्वागत नगर में दीप प्रज्जवलित कर किया गया था।

त्योहार कैसे मनाते है Festival Celebration

दीपावली से सम्बन्धित पौराणिक कथायें भी हैं –

एक बार धन एवम् समृद्धि की देवी लक्ष्मी देवताओं के भोग–विलास और अहम् भावनाओं से दुखी होकर अपने पिता समुद्र के यहाँ चली गई। देवताओं में दरिद्रता की स्थिति आ गई। तब श्री गणेश ने देवताओं को सुझाव दिया कि समुद्र का मंथन कर पुनः लक्ष्मी को प्राप्त करें। देवताओं ने वैसा ही किया। समुद्र मंथन से चौदह रत्न प्राप्त हुए जिनमें से एक लक्ष्मी थी। लक्ष्मी के आगमन पर दीपोत्सव मनाया गया। घूंकि श्री गणेश के बताये उपाय से लक्ष्मी का पुनार्गमन हुआ इस कारण लक्ष्मी के साथ श्री गणेश की भी पूजा की गई। जो वर्तमान में भी की जाती है।

इसी प्रकार एक पौराणिक कथा यह भी है प्राचीन काल में असुर राज बलि ने तीनों लोकों पर अपना राज्य कर लिया था। विष्णु ब्राह्मण वेश(वामन अवतार) धर कर राजा बलि से दान मान्गने गये। उन्होंने तीन पग धरती दान में माँगी। बलि यह षडयन्त्र जानकर भी दान देने का तैयार हो गये। भगवान विष्णु ने तीन पग में तीनों लोक नाप लिये और राजा बलि पाताल लोक में समा गये। किन्तु बलि की दानशीलता से प्रभावित होकर विष्णु जी ने उन्हें पाताल लोक का राजा बना दिया। इसी कथानुसार दीपमालिका प्रज्जवलित की जाती है।

दीप प्रज्जवलन के सम्बन्ध में ''कल्प सूत्र'' में उल्लिखित है कि जब महावीर ज़ी का निर्वाण हुआ तब सर्व सम्मति से यह निर्णय लिया गया कि अब ज्ञान की ज्योति बुझ गई है इस कारण उस दिन दीप ज्योति प्रज्जवलित की जाये। वह दिन कार्तिक मास की अमावस्या ही था।

लोक–विश्वासों के आधार पर लक्ष्मी और दरिद्रा दो बहनें हैं, जो एक साथ दीपावली की रात पृथ्वी लोक का विचरण करती हैं। जिस घर में स्वच्छता और प्रकाश होता है देवी लक्ष्मी वहाँ निवास करती है तथा जहाँ गन्दगी और अन्धकार होता है वहाँ दरिद्रा स्थान बना लेती है। इसी भावना से बुन्देलखण्ड के दूरवर्ती ग्रामों में महिलायें आज भी सूप और डोंडी बजाकर कहती हैं–

निकल दलिद्दर, आय लच्छमी।

इसी प्रकार लोक में अनेक कथा–कहानियाँ दीपावली से सम्बन्धित हैं किन्तु सार सबका एक है कि लक्ष्मी देवी का पूजन, दीप जलाना और स्वच्छता।

दीपावली पूजन के पाँच दिवसीय महोत्सव में अनेक भाव छुपे हैं। जो स्वच्छता, स्वास्थ्य एवम् पर्यावरण के लिये अत्यन्त आवश्यक है। दीप जलाने से वातावरण में व्याप्त रोग के कीट जलकर समाप्त हो जाते हैं। आपसी प्रेम, सौहार्द और प्रसन्नता का पर्व दीपावली होता है। आत्मिक तथा बौद्धिक प्रकाश का दीप जलाना इसका सन्देश है। दीपावली से समाज से अज्ञान का अंधकार मिटा कर ज्ञान का दीप जलाये, इस भावना को बल मिलता है।

बुन्देलखण्ड में दिवारी भित्ति पर चित्रित की जाती है। यह सम्भवतः अन्य क्षेत्रों से बिल्कुल अलग विधान है। दिवारी चित्रान्कन अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है क्योंकि यह ज्यामितीय चित्रान्कन है। महिलायें सही चित्रण करती हैं उन्हें इसका सम्पूर्ण ज्ञान है। यही लोक–ज्ञान होता है। दिवारी चित्रान्कन को ''सुराती'' कहते हैं। चित्रान्कन का नामकरण सम्भवतः सुर रात्री अर्थात देवताओं की रात्रि से किया गया है। इस कारण दिवारी की रात देवताओं के आगमन की रात मानी जाती है।

दिवारी चित्रान्कन हेतु पूजागृह की भित्ति छुई या खड़िया से पोतकर सूखने के बाद उस पर गेरू को पानी में घोलकर सुराती लिखते हैं। सुराती लिखने के लिये सींक में रूई लगाकर प्रयोग करते हैं। सांतिया को जोड़–जोड़ कर सोलह कोठे की सुराती बनाई जाती है जो शुभ मानी जाती है। इसी प्रकार विष्णु रूपी ''सुरेता'' नौ कोठे के शुभ होते है। सूरज, चन्दा, श्री गणेश, तुलसीघरा, डबुलिया, धन के भरे सात या नौ घट, स्वास्तिक, चौक बनाते हैं। पाँच दीपक बनाये जाते हैं जो क्रमशः बुद्धि, ज्ञान, स्वास्थ्य, सुख व समृद्धि के प्रतीक हैं। श्री यंत्र का चित्रण जो सब ओर से समान सन्ख्या का योग देता है, जो विषम परिस्थितियों में सन्गठन तथा एकता को शुभ होना दर्शाता है। गोवर्धन, गाय और हाथी समृद्धि तथा वैभव के प्रतीक के रूप में चित्रित किये जाते हैं। चौपड़ खेलते चार व्यक्ति दूसरी ओर बिना पतियों के बच्चों के साथ पूजा करती स्त्रियां, चित्रित करते है। पांडव भी चित्रित किये जाते हैं जिसका आशय होता है कि जुआ खेलने से उन्हें अपना राज–पाट हारना पड़ा और वन के दुःख भोगने पड़े। चिड़िया–चिरौटा बनते हैं, मणिधारी सांप धन का प्रतीक इत्यादि चित्रित किये जाते हैं। सेई(सेही) और उसके बच्चे बनाये जाते हैं। चित्र मे ऊपर ऊँ श्री गणेशाय नमः, श्री लक्ष्मी जू सदा सहाय रहें तथा शुभ–लाभ लिखा जाता है। इन समस्त आकृतियों को रेखाओं द्वारा

चौखाने या आयताकार मे बन्द कर देते हैं। समस्त देवी–देवताओं की कृपा, धन धन्य और समृद्धि परिवार मे बनी रहें। इसका यही आशय प्रतीत होता है।

पूजन का विधान भी विशेष होता है। धरती पर कमल चौक चित्रित कर मिट्टी से बने गणेश लक्ष्मी की मूर्तियाँ चित्रण के समक्ष रख दी जाती है। नई फसल का धन–धान्य, खील–लाई व गन्ने के रस से तैयार शक्कर के बताशे, खिलौने इत्यादि चढ़ाने की परम्परा है। आरती, हवन किया जाता है। मांय (मातृ) की पूजा आवश्यक होती है। परिवार के सभी सदस्यों के नाम के कोरा(हिस्सा) एक कोरे फरका(रंगीन कपडा) पर रखे जाते हैं। खेत की मेड़, तुलसी घरा, पूजागृह और घिनौची(पानी रखने का स्थान) पर दिये अवश्य जलाए जाते है। कुछ घरों मे ''गोपाल सहस्त्र नाम'' का पाठ भी किया जाता है। घरों में सोने–चांदी के जेवरों तथा तिजोरी की पूजा भी की जाती है।

बुन्देलखण्ड मे पुरानी परम्परा है कि बच्चे दीपावली की रात मे ''ओद–बोद'' खेलते हैं। एक तार मे कपडे के या घास के गोले को बाँध लेते हैं, और उसे जलाकर अपने चारों ओर घुमाते हैं, इसके घुमाने की कला होती है, जिससे शरीर के चारों ओर प्रकाश चक्र बनता है। खेल के साथ वातावरण मे बीमारी के छोटे छोटे कीटाणु भी जलकर नष्ट हो जाते है। यह खेल स्वास्थ्यवर्द्धक माना जाता है। दिवारी की रात भर पूजा में दिया जलता रहता है व उस पर काजल पारने की परम्परा है। जिसे नेत्रों के लिये लाभकारी मानते हैं। दिवारी पर ''दिवारी गीत'' गाने की परम्परा है। यह गीत लोक–जीवन के गीत हैं जिनमे आदर्श नहीं वरन यथार्थ की अभिव्यक्ति अधिक होती है।

निम्न लोग बड़े अफसरों को खुश करने के लिए ''डलिया'' भेन्ट करते है।

<u>55 गोधन गोवर्धन पूजा(परेवा)</u>

मां, बहन गोबर से विशेष तौर पर गाय के गोबर से गोवर्धन बनाती हैं। दाल चावल (पके हुए) का भोजन भोग लगाते हैं। मौनिया घर के आगे गोवर्धन के उपर चढ़ कर कचर कर/मिटा देते हैं और उसके ऊपर दिवारी खेलते हैं और वहां पर रखे हुए पकवान(दाल चावल) भोजन को खा लेते हैं। परेवा / गोवर्धन के दिन ही मौनी उपरोक्त कार्य कर देते हैं

सारे कार्यक्रम अमावस(अमावस्या) की जगह परेवा को किए जाते हैं यदि अमावस्या को ग्रहण लगा हो।

दीपावली के उपरान्त कार्तिक माह के शुक्ल पखवाडे की प्रतिपदा को यह पूजन होता है। इसे गोवर्धन पूजन भी कहते हैं। घर के बीच आन्गन में गोबर से "गोवर्धन" बनाते है। इसे "गोधन" भी कहते है। गोधन से पूजाघर तक खडिया व गेरु की दो समानान्तर रेखाए खीचतें है। पूजा स्थल के पास कोरे घड़े आदि रख कर पूजन किया जाता है। इस पूजन का प्रसाद केवल बच्चों को ही दिया जाता है। इस दिन ''समूदी '' रसोई बनती है। मिट्टी के पात्रों/बर्तनों में भोजन /पकवान भर कर, परिक्रमा कर पूजन पूर्ण होता है।

आज के दिन द्वापर युग मे कृष्ण ने अपनी दायें हाथ की कनिष्ठा/छिंगुरी पर गोवर्द्धन पर्वत धारण कर के इन्द्र के प्रकोप से ब्रज मण्डल को बचाया था।

<u>56 मकर सन्क्रान्ति</u>

यह पर्व अंग्रेजी ग्रेगोरियन कैलेंडर के अनुसार 14 जनवरी को पड़ता है। विक्रमी पंचाग से तिथि निश्चित नहीं होती है। आज के दिन सूर्योदय से पूर्व स्नान करने के पश्चात अग्नि पर तिल घी चढ़ाते है। इस पर्व पर तिल के लड्डू तिल व खिचड़ी दान करते है। कई स्थानों पर मेले लगते है। ''समूदी'' रसोई बनाई जाती है।

<u>57 भंवरात</u>

मकर सन्क्रान्ति पर्व के अगले दिन "भंवरात" मनाते है। ''भंवरात'' के दिन रात में मिट्टी के हाथी, घोड़ा, गाड़ी एवम् चकिया की पूजा करते हैं। लड़के घोड़ा से एवम् ग्रामीण अन्चल में लड़कियाँ मिट्टी की चकिया से खेलती हैं। सर्वप्रथम चौक पूर कर, उस पर लकड़ी का सिन्हासन रखकर, उस पर घोड़ा, चकिया, हाथी, गाड़ी एवम् गौनों सहित रखकर उनकी विधि पूर्वक पूजा करते है। गौनों की सन्ख्या, परिवार के सदस्यों की सन्ख्या के बराबर होती है। पकवानों में अनेकों तरह के लड्डू– जैसे मूँग, आटा, काली–सफेद तिली, खील, लइया, देवल तथा मेवा आदि के बनते है।

59 बसन्त पंचमी

माघ माह शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन बसन्त पंचमी का पर्व मनाया जाता है। बुन्देलखण्ड का प्रमुख त्यौहार बसन्तोत्सव–ऋतोत्सव का एक प्रमुख पर्व है। बसन्त ऋतु के आगमन पर निर्जीव वन वृक्ष का परिवर्तन ही जीवन का शाश्वत नियम है।

आज के दिन माँ सरस्वती का जन्मोत्सव मनाया जाता है। पीले पुष्प, बेसन के लड्डू आदि का भोग लगाया जाता है तथा पीले वस्त्र धारण किये जाते हैं। विभिन्न विद्यालयों में सरस्वती पूजन के साथ प्रसाद वितरण किया जाता है। ऋतुओं में बसन्त ऋतु श्रेष्ठ है। कविकुल शिरोमणि कालीदास का बसन्त वर्णन–

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्म, स्त्रियः सकाम पवान सुगन्ध सुखाः।
प्रदोषा दिव साश्चरम्यः, सर्व प्रिये चारुतर बसन्ते।।

60 सूर्यपूजा

वर्तमान काल में इस अन्चल में सूर्यपूजा की सशक्त परम्परा बुन्देलखण्ड के लोक जीवन में प्राप्त हुये हैं। प्रत्येक रविवार को अनेक व्यक्ति सूर्यपूजा एवम् व्रत करते हैं। सूर्यपूजा का प्रमुख पर्व मकर सन्क्रान्ति बुड़की के नाम से उल्लासपूर्वक तीन दिनों तक मनाया जाता है। उल्लेखनीय है कि इस अन्चल में दीवाली तथा होली को छोड़कर केवल बुड़की ऐसा पर्व है जो तीन दिनों तक व्यापक रूप से मनाया जाता है। इसमें प्रथम दिन मकर सन्क्रान्ति के एक दिन पूर्व तिलैंया मनाते हैं इस दिन तेल तथा तिल से बने विविध व्यन्जन (पकवान) बनाने एवम् खाने की परम्परा है। दूसरे दिन सन्करात मनाते हैं। इस दिन किसी तालाब या नदी पर जाकर शरीर पर तिल, तैल मलकर स्नान करने एवम् सूर्य पूजा के उपरान्त तिल तथा खिचड़ी दान करने की परम्परा है। गान्वों में सन्क्रान्ति के दिन बैलगाड़ियों में बैठकर नर, नारी, बालक, वृद्ध निकट की किसी नदी, तालाब, सूर्य मन्दिर या सूर्यकुण्ड पर जाते हैं, बैलों को सजाया जाता है। उन पर कशीदाकारी की गई झूलें डाली जाती है। बैलगाड़ियों की दौड़ प्रतियोगितात्मक होती है। तीसरे दिन भंवरात मनाई जाती है। इस दिन छप्पन प्रकार के व्यन्जन (पकवान) बनाये जाते हैं। रात में वाहनों के प्रतीक मिट्टी से बने वाहन खिलौनों की पूजा की जाती है। इनमें हाथी, घोड़ा, गड़िया (बैलगाड़ी या भैंसागाड़ी) की पूजा करते हैं। इन सभी में चार चार पहिये लगे होते है। इनमें गौने रखकर उनमें पकवान भरते हैं। गौनों की सन्ख्या परिवार के सदस्यों की सन्ख्या के बराबर होती है। पकवानों में अनेक तरह के लड्डू यथा मूंग, सफेद तिली, खील, लइयां, देवल, रामदाना आदि के लड्डू, नमकीन खुरमा, मीठे खुरमा, सेव, मठरी, पपड़िया आदि आदि होते है। घर के पूजागृह में गोबर से लीपकर उस पर आटा का चौक पूरकर उसके ऊपर लकड़ी का इतना बड़ा पाटा रक्खा जाता है कि परिवार के सदस्यों की सन्ख्या के समतुल्य मिट्टी या धातु के बने हाथी, गड़िया, आदि रक्खे जा सकें। इन खिलौनों पर गौनें कसकर उनमें व्यन्जन भरकर रात्रि में घर पर बड़ा बालक इनकी पूजा करता है। बालक के अभाव में घर की सयानी महिला पूजा करती है। इनमें से जितने बालक बालिकायें होती हैं। उतनी गौंने लदे वाहन खिलौने अगले दिन प्रभात में बालक बालिकाओं को दे दिये जाते हैं। वह इन वाहन खिलौनों को पट्टिओं के सहारे खींचते हुए किसी बाग में या गान्व के बड़े चबूतरे पर ले जाते हैं। गान्व के सभी बालक वहीं एकत्र होते हैं तथा परस्पर मिल बांट कर उन व्यन्जनों एवम् पकवानों को खाते हैं। घर पर बची शेष गौंने, व्यन्जन सहित सुरक्षित रख दी जाती है। उन्हें अगली बसन्तपंचमी के दिन खाली किया जाता है तथा पुनः पूजा करके गौनों में रक्खे व्यन्जन परिवार के सदस्य मिल बांटकर खाते है। खाली गौने सुरक्षित रख ली जाती हैं। ताकि अगली भंवरात पर काम में आवें।

इसके अतिरिक्त माघ माह में सूर्यपूजा का विशेष लोक–पर्व होता है। माघ माह के अन्तिम रविवार को सूर्यपूजा की जाती है। इसके लिये खुले आन्गन या घर के बाहर चबूतरे पर गोबर से लीपकर उस पर गेहूं के आटा से गोलाकार चौक पूरा जाता है। उसके केन्द्र के आटे से बनी अठवाई (छोटे आकार की पूड़ी) वृत्ताकार सजाते हैं तथा बीच में गोल कटोरी में खीर रखते हैं। यह रचना सूर्य की तरह बन जाती है। उसका पूजन करके खीर अठवाई का प्रसाद बांटा जाता है। कहानी कही जाती है।

इस प्रकार लोक जीवन में सूर्य पूजा के विविध स्वरूप प्रचलित है। क्षेत्र की सन्स्कृति तथा परम्पराओं के अनुशीलन के लिये इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को भी समझना आवश्यक है।

61 बड़े गणेश

माघ महीने के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को बड़े गणेश का पूजन होता है। आज के दिन श्री गणेश भगवान का व्रत, स्मरण, वंदन उत्साह के साथ किया जाता है। तिल व बेसन के लड्डुओं का भोग लगाया जाता है। मनुष्य अपने दुख एवम् क्लेशों से मुक्ति पाने के लिए विध्न विनायक से प्रार्थना करते हैं।

62 होलिकोत्सव

फाल्गुन माह की शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को यह पर्व मनाया जाता है। यह पर्व ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर अत्यन्त हर्ष के साथ मनाया जाता है। होली के शुभ अवसर पर नर–नारी होली के रंगों से मस्ती में झूम उठते हैं। होली के आठ दिन पूर्व होलिकाष्टक आरम्भ हो जाता है। इसमें घर में गोबर के बरुले आदि बनाये जाते हैं, इनके बीच में एक छेद होता है। होली के दिन इन बरुलों की मालायें बनाकर घर में छोटा डंडा गाड़ कर धरती पर स्थापित कर होलिका दहन किया जाता है। होली के पर्व पर एक–दूसरे को गुलाल से टीका करते, रंग डालते एवम् गले मिलते हैं। यह पर्व साम्प्रदायिक सद्भाव एवम् एकता बनाये रखने में भी सहायक है। इस त्यौहार में नये–नये पकवान गुजियां, लड्डू, पपड़िया, नमकीन सेव के लड्डू आदि का विशेष महत्व है।

63 शिवरात्रि

फाल्गुन माह की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी/चौदश के दिन शिवरात्रि का पर्व ससम्मान मनाया जाता है। शिव के विशाल दर्शनीय मन्दिरों में दर्शकगण व भक्त दर्शन करने जाते है। शिवपूजन में विल्वपत्र/बेलपत्र, धतूरे के गट्टा, गेहूँ की बाले, बेर, शकला/शकरकन्द, जल, हल्दी, अक्षत/चावल एवम् फूल आदि का प्रयोग करते है। मान्यता है कि आज के दिन शिव पार्वती मंगल परिणय के बन्धन में बन्धे थे। इस पर्व को रात्रि जागरण के साथ भजन–कीर्तन आदि होते हैं।

64 से 70 सुहागिले

बुन्देलखण्ड में प्रत्येक शुभ कार्य में सुहागिन स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। देवी पूजन में ''सुहागिलें''(सुहागिनें) न्योती जाती है। लोक–जीवन में यह सुहागिनें कई प्रकार की होती हैं। इन अवसरों पर भित्ति चित्रित देवी की पूजा का विधान है। देवी की प्रतीक पुतरियां अधिकान्शतया सिन्दूर से बनाई जाती हैं। कालका देवी, बीजासेन, मनसा देवी या दसारानी की सुहागिलें, पारिवारिक सुरक्षा, समृद्धि एवम् मनोकामना पूर्ति हेतु की जाती है। इनमें से कालकादेवी तथा बीजासेन का वार्षिक या घर में मंगलकार्य होते समय ''पाटा भरा'' जाता है। जिसका अर्थ है पूजा में सन्दर्भित व्यन्जनों तथा वस्तुओं को देवी को अर्पित कर सुहागिनों में या परिवार के सदस्यों में वितरित करना। सुहागिल में न्योती गई महिला व्रत रखती है।

विवाह के समय भी कुछ ''सुहागिलें'' होती है। लड़के की बारात जाने के बाद घर में ''गौरइयां'' खिलाईं जाती हैं। लड़की जब ससुराल से पहली विदा के बाद घर आती है तब ''सुहागिलें'' खिलाई जाती हैं। प्रत्येक ''सुहागिलों'' में सुहागिन स्त्रियों को भित्ति चित्रित देवी की पुत्तरियों की पूजा करना अनिवार्य है, तत्पश्चात् उसे देवी पर अर्पित सुहाग चिन्ह, चूड़ी, बिन्दी, महावर, सिन्दूर आदि दिया जाता है। बुन्देलखण्ड में सन्कटा की सुहागिलें भी होती हैं।

अन्य पूजन, व्रत व अनुष्ठान

अन्य पूजन व्रत अनुष्ठान बुन्देलखण्ड के उत्सव प्रिय क्षेत्र है। यहां पर किसी न किसी घर में कोई ना कोई कार्यक्रम होता ही रहता है। त्योहारों के अलावा यहां पर स्त्रियां अपने परिवार की मंगल कामना हेतु तथा अनिष्ट निवारण के लिए अनेक प्रकार की सुहागले करती हैं। इस व्रत में केवल सौभाग्यवती स्त्रियां ही भाग लेती हैं। इस पूजन की कोई निश्चित तिथि नहीं होती है। इस क्षेत्र में निम्न प्रकार की सुहागलें होती हैं जैसे गौरइयां, हुर्रइयां, दशारानी, बिजासेन, सन्कटा, पुरखन/सौतन आदि की सुहागले आदि।

दशारानी

दशारानी में गाय के ब्याने तथा तुलसी के पौधे में पहली बार बाल आने पर बुन्देलखण्ड की स्त्रियां दशारानी का व्रत रखती हैं। इस व्रत में गड़ा लेने से पूर्व 10 दिन नियमपूर्वक व्रत एवम् पूजन किया जाता है। प्रतिदिन एक

कहानी सुनाई जाती है या सुनी जाती है इस प्रकार 10 दिन तक 10 कहानी सुनी जाती हैं। दसवे दिन दशारानी की सुहागले की जाती है

मलमास

जिस वर्ष अधिमास पड़ता है, उस वर्ष के किसी महीने को मलमास कहा जाता है। मलमास महीने में कच्ची मिट्टी के 108 शिवलिंग बनाकर प्रतिदिन उनका पूजन कर, बेल पत्र चढ़ाकर, उन्हें जलाशय में विसर्जित करते है। यह कार्यक्रम पूरे महीने चलता है। रामचरितमानस का पाठ होता है। आखिरी दिन शिव जी के मन्दिर में पूजन कर, कन्याओं को भोजन करवाने के पश्चात उन्हें दान देकर विदा करते हैं।

मंगलवार व्रत

मंगलवार, हनुमान जी का दिन माना गया है और हनुमान मन्दिरों में इस दिन हनुमान जी को चोला चढ़ाया जाता है। सिन्दूर जो घी में मिलाया गया हो अर्थात घृत मिश्रित सिन्दूर का लेपन हनुमान जी की प्रतिमा पर किया जाता है तथा नैवेद्य अर्पित का कपूर, घी की आरती की जाती है। यह पूजा सामान्यतया स्त्रियों व लड़कियों के लिए निषेध है। पुरुष वर्ग के लोग ही इस पूजा को करते हैं।

बुन्देलखण्ड ऋषियों की तपोभूमि रही है। यहाँ पर अनेकों अनुष्ठान, व्रत, पूजन, मन्दिरों एवम् घरों में अनिष्ट को दूर करने के लिए किये जाते हैं। महाकाली जप, शिर्वाचन, महामृत्युंजय जप एवम् शतचण्डी आदि ऐसे ही महानुष्ठान में आते हैं। ये अमंगल को दूर करने वाले हैं।

71 कोहबर या मैहर की पूजा

विवाह के समय अनेक रीति रिवाज होते हैं। बुन्देलखण्ड में भी लोकाचार होते हैं। जब वर–वधू फेरों से उठते हैं, तब कोहबर की रस्म होती है। यह एक प्रकार से वधू पक्ष वाले वर से अपने पूजागृह में पूजा कराते हैं। इसी अवसर पर साली व सलहज (वधू की बहन व भाभी) वर से हास–परिहास करती हैं। पूजागृह में विवाह के समय एक भित्ति चित्र भी बनाया जाता है। बुन्देलखण्ड में इसे मैहर की पूजा भी कहते हैं। यह भित्ति चित्र गेरू से बनाने की परम्परा है। चित्र चौखाने में देवी–देवता स्वरूप देकर चित्रित किया जाता है। चित्र में सूरज, चन्दा, सांतिया, चौक, गंगा–जमुना, करवा, मैरइयां आदि चित्रण किया जाता है। परिवार तथा जाति के अनुसार इसमें परिवर्तन भी हो जाता है। किन्तु मुख्यतः इन चित्रों को चित्रित किया जाता है। चित्रण के समक्ष परिवार के सदस्यों द्वारा भरी गई जल की गगरी होती है। सन्युक्त परिवार में सबका मैहर एक ही होता है। परिवार में इसे ''मैहर भरना'' कहा जाता है। विवाह के प्रारम्भ में ही मैहर की पूजा की जाती है। आटे की मीठी मांय बनती है जो विवाह के बाद अपने परिवार में बाँटी जाती है।

भित्ति चित्रण के समक्ष वर–वधू को ले जाया जाता है। कमरे के द्वार पर वधू की बहन दरवाजा रोक कर नेग लेकर वर–वधू को भीतर जाने देती है। कमरे में कपड़े में छुपाकर अपूज्य वस्तुऐं जैसे वधू की चप्पल आदि रख दी जाती हैं, उसे कुल देवी बताकर वर से पूजा करने को कहा जाता है, यदि वह पूज देता है तो सभी उसका परिहास करते है। वधू की भाभी पूजा में दो बाती के दिये को वर से एक करने को कहती है। वर को कोई मूल्यवान धातु (सोना, चाँदी) की सींक या सिक्का देकर ''बाती मिलवाई'' जाती है। यह वर–वधू के मिलन का प्रतीक भी माना जाता है। वधू के कुल देवताओं के समक्ष वर का वचनबद्ध होना भी है कि हम दोनो आज से मन–शरीर से एक होकर जीवन व्यतीत करेंगे। जलती हुई बाती प्रेम, विश्वास और जीवंतता की प्रतीक होती है। वर–वधू एक दूसरे को दूध–भात या खीर खिलाते हैं। कुछ लोगों के यहाँ बताशे या मिठाई भी खिलाते हैं।

72 आरते–मौरते और हाथे

विवाह के अवसर पर जब वर के यहाँ वधू को विदा कराके बारात लौटने वाली होती है। उस समय घर में प्रसन्नता का वातावरण होता है। ऐसे में घर की मुख्य द्वार के दोनो ओर लोक चित्रकारी की जाती है। घर की कोई सुहागिन महिला गेरु हल्दी या ऐपन से (उपलब्धि या परम्परा के आधार पर) 'आरते–मौरते" बनाती है। यह वर–वधू के स्वागत चिन्ह होते हैं। वे गृह रक्षक तथा स्वागतोत्सुक गृह देवता प्रतीत होते हैं। वर–वधू के आने पर मुख्य द्वार की पारम्परिक रस्मों के बाद वर–वधू हल्दी व पानी के घोल में हाथ भिगोकर भित्ति पर हाथे या थापे लगाते हैं। यह आरते मौरते तथा हाथे यह प्रदर्शित करते हैं कि घर में वर–वधू का आगमन हो चुका है। आरते–मौरते बुन्देली शब्द ही है

इसके आधार पर यह लगता है कि ''मौर'' धारण करने वालों की आरती करने हेतु हम प्रतीक्षारत हैं। यह प्रतीक चिन्ह के समान हैं। वर–वधू, कुल देवी, देवता तथा देव–स्थानों पर भी हल्दी से हाथे लगाते हैं।

आरते–मौरते अधिकान्शतया गेरू से ही चित्रित किये जाते हैं। इसके लिये गेरू को पानी में घोलते हैं। सींक में रूई लगाकर ब्रश तैयार किया जाता है। उसके बाद चूने से पुते घर के मुख्य द्वार के दोनो ओर की भित्तियों पर चित्रण किया जाता है। आरते–मौरते की मानवाकृति बनाने के उद्देश्य से उनका मुख, हाथ, पैर बनाये जाते हैं। धड़ चौकोर होता है। जिसको चित्रित करने वाली महिला अपनी कला योग्यता के अनुसार सजाती है। यह चित्रण पूर्णतः पारम्परिक होता है।

73 ढरकौना

यह गेरू से निर्मित शुभ प्रतीक चिन्ह है जिन्हें ढरकौना कहा जाता है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में देवस्थानों, लोक–देवताओं के चबूतरों, मढ़ियों तथा घर के मुख्य द्वारों पर भी ढरकौना देखने को मिल जाता है। ढरकौना बुन्देली शब्द है इसका शाब्दिक अर्थ है ''ढरक आना'' (नीचे की ओर बहना या गिरना) इसी शाब्दिक अर्थ का पर्याय ढरकौना होते हैं। इसमें गेरू व पानी तथा रूई का प्रयोग होता है। गेरू को पानी में घोलकर थोड़ी सी रूई उसमें भिगो देते हैं। जहाँ ढरकौना लगाने होते हैं वहाँ भित्ति पर उचित उँचाई पर रूई को रखकर उंगलियों से दबाते हैं। रूई मुख्य स्थान पर गेरू का गोल धब्बा बनाती है तथा उसका शेष गेरू स्वयम् नीचे की ओर बह जाता है। इस प्रकार ढरकौना अपने नाम के अनुरूप बन जाते हैं। दीपावली व देवठान पर घर के मुख्य द्वार के दोनो ओर ढरकौना लगाये जाते हैं। यह 5, 7, 9 या 11 सन्ख्याओं में लगाये जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में यह घर से बाहर की पूजा, जैसे– देव स्थानों या लोक–देव स्थानों पर अवश्य लगाये जाते हैं।

74 भये के सांतिया

इन्हें भये के सांतिया अर्थात जन्म के अवसर पर बनने वाले स्वस्ति चिन्ह कहा जाता है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार इसका चित्रण शिशु जन्म के अवसर पर किया जाता है। जब शिशु जन्म लेता है तब परिवार में उल्लास का वातावरण रहता है। ऐसे में पद के अनुरूप सभी सगे सम्बन्धी तथा परिवार के सदस्य व जिनका लोक–जीवन में अत्यन्त महत्व होता है, के साथ लोकाचार करते है। ऐसे में बच्चे की बुआ अर्थात प्रसूता की ननद विशेष मान्य होती है। उसके अनेक नेग होते हैं, जो वह उत्साहित होकर करती है। इसी प्रकार प्रसूति गृह के द्वार की भित्ति पर गोबर से शुभ चिन्ह अंकित करती है। उन चिन्हों पर जौ व देवल/दाल के दाने लगाकर सजाया भी जाता है। भये के सातियों में स्वास्तिक चिन्ह आवश्यक है। इसके अतिरिक्त चक्राकार चित्रण किया जाता है, वह स्वास्तिक का रूप ही होता है। चक्राकार चित्रण पुत्र जन्म पर बनाया जाता है। पुत्री जन्म की सन्रचना भिन्न होती है, इसमें चतुर्भुज जैसी रचना की जाती है जिसमें चारों दिशाओं को इंगित करते गोलाकार कोने भी होते हैं। मध्य में खाली स्थान में भी एक छोटा चतुर्भुज होता है।

पुत्र एवम् पुत्री के जन्म पर बनाये गये भिन्न आकार के सांतिये जन्म के साथ ही उन की सामाजिक स्थिति विवेचित करते प्रतीत होते हैं। पुत्र जन्म का चक्राकार सांतिया जन्म की सार्थकता प्रदर्शित करता है कि जन्म लेकर अपने व्यक्तित्व का विकास करते हुए समाज के जीवन चक्र के साथ चलते सम्पूर्णता की प्राप्ति करे। चक्र का अन्तिम छोर खुला होता है जो बन्धन मुक्त जीवन का पर्याय है।

पुत्री जन्म के चतुर्भुज चारों दिशाओं से बन्द हैं जो समाज में नारी की स्थिति प्रदर्शित करते प्रतीत होते हैं। वह सभी ओर से बन्धनों में है। घर व समाज की चार दीवारी उसकी सीमा रेखायें हैं जिसमें वह विचरण करती हुई, जीवन बिताये। इसी प्रकार चतुर्भुज में बनी चौकोर आकृति उसकी प्रजनन शक्ति या मातृत्व की प्रतीक है अर्थात उसमें सृष्टि सन्चालित करने की शक्ति विद्यमान है।

भये के सांतिया बनाने के लिये गाय के गोबर को शुद्ध माना जाता है। गोबर को उंगलियों की सहायता से उभरी रेखायें बनाते हैं। चित्रानुसार रेखाओं को आकृति प्रदान की जाती हैं। उसके बाद देवल व जौ गोबर की उभरी रेखाओं पर लगा दिये जाते हैं।

75 चरूआ

बच्चे के जन्म के समय परिवार की वरिष्ठ महिला(सास), प्रसूता के लिये जड़ी बूटी युक्त जल तैयार करती है। यह जल, जिस मिट्टी के पात्र में पकाया जाता है, उसे चरूआ कहते हैं। ''चरूआ'' एक सन्स्कार है।

चरूआ के लिये एक मिट्टी का घड़ा लेते हैं, उसे धोकर पवित्र किया जाता है, फिर उस पर सास गोबर से शुभ चिन्ह बनाती है। उस पर जौ, देवल चिपका कर सुसज्जित करती है। तत्पश्चात् उसमें प्रसूता के स्वास्थ्य के लिये उचित जड़ी बूटियाँ डाली जाती हैं जो लोक–ज्ञान का उदाहरण हैं। चरूआ में पानी भरकर उसमें सुपाड़ी, हल्दी की गाँठ, पीपरा मूल, सौंठ, लौंग, तांबे के पैसे, खैर की लकड़ी आदि डालने की प्रथा है। इसे चरूआ की साज कहते हैं।

चरूआ रखने से पूर्व बुलावा लगाया जाता है। सभी महिलायें एकत्रित होकर मंगलगीत गाती हैं। यदि लड़का होता है तो सात कन्यायें चरूआ का पूजन कर आग पर चढ़ाती हैं। यदि लड़की का जन्म हुआ हो तो पाँच कन्यायें चरूआ पूजन करती हैं। चरूआ का विधिवत पूजन होता है। सास हल्दी, अक्षत तथा दूर्बा लगाकर चरूआ–पूजन करती हैं, फिर चूल्हे की आग पर कन्यायें चरूआ रख देती हैं। कन्याओं को गुड़ या बताशे दिये जाते हैं। प्रसूता सास को नेग(धन या वस्तु) देती है। चरूआ का मुंह पलिया/मलिया(मिट्टी के ढक्कन) से बन्द कर दिया जाता है। जब पानी पक कर आधा रह जाता है तब जड़ी बूटियों का रस भली प्रकार पानी में उतर आता है। चरूआ का जल औषधि रूप में परिवर्तित हो जाता है। उसे प्रतिदिन प्रसूता को पिलाना आवश्यक होता है। लोक–विधान के अनुसार पहले दिन चरूआ का पानी चार अंगुल तक पिलाना चाहिये। दूसरे दिन पका हुआ पानी आधा रह जाना चाहिये। इस प्रकार से जब एक चरूआ का पानी समांप्त हो जाये, तब दूसरा पानी भरकर तैयार कर लिया जाता है। यह पानी प्रसूता लगभग चालीस दिन तक पीती है। इससे प्रसव से आई शरीर की कमजोरी दूर होती है एवम् शीघ्र स्वास्थ्य लाभ होता है।

76 दस्टौन

जीवन के सोलह सन्स्कारों में जन्म–सन्स्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। परिवार में शिशु के जन्म के साथ ही परिवार में आनन्द उल्लास का सन्चार हो जाता है। उसी प्रसन्नता को प्रगट करने के लिये जन्म सन्स्कार से जुड़े अनेक उत्सव होते है। ऐसा ही उत्सव है दस्टौन, जिसमें प्रसूता के मातृत्व की पूजा की जाती है। यह शिशु जन्म के दसवें दिन होता है।

इस अवसर पर प्रसूता को जड़ी बूटियों या नीम के गर्म पानी से स्नान कराके, मायके से आये नवीन वस्त्र आभूषण धारण करवाये जाते हैं। शिशु के लिये भी उसकी बुआ वस्त्र–आभूषण, पालना, खिलौने इत्यादि लेकर आती है। पुराने समय में पालने के स्थान पर बाँस की बनी चंगेल आती थी। पुरा, पड़ोस में दस्टौन का बुलावा लगता है। सोहर व मंगल गीत गाये जाते हैं। भोजन में सन्मूदी रोटी(कढ़ी, चावल, दाल, रोटी, बरा, फरा, पापड़, पछयावर आदि) बनती है। रिश्तेदारों की पंगत भी की जाती है। प्रसूति गृह की भित्ति पर दस्टौन का चित्रान्कन गोबर या गेरू से किया जाता है। प्रसूता की ननद प्रसूतिगृह की भित्ति पर दस्टौन बनाती है। वही दस्टौन का पूजन भाभी से करवाती है। घर में बनी भोजन सामग्री प्रसाद रूप में प्रयोग की जाती है। हल्दी, चन्दन, अक्षत व फूल, दीप आदि से दस्टौन के भित्ति चित्र की पूजा की जाती है। प्रसूता की गोद में आटे से बने चन्दा–सूरज डाले जाते हैं। बुआ बच्चे को काजल लगाती है। ननद को इन सब कामों का नेग भी मिलता है।

दस्टौन के भित्ति चित्रण में सूरज–चन्दा, सांतिया, चौक, गंगा–जमुना आदि चित्रित किये जाते हैं। यह देवी स्वरूप चौकोर आकृति में चित्रण होता है।

77 सोमवती अमावस्या

बुन्देली में ''सोमती अमाउस'' कहा जाता है। वैसे तो प्रतिमाह दो पक्ष होते हैं एक कृष्ण पक्ष दूसरा शुक्ल पक्ष। कृष्ण पक्ष का अन्तिम दिन अमावस्या और शुक्ल पक्ष का अन्तिम दिन पूर्णिमा को माना जाता है। यदि अमावस्या सोमवार के दिन पड़ती है तो उसे सोमवती अमावस्या कहते हैं। इस दिन सुहागिन स्त्रियाँ व्रत रहती हैं। वे तुलसी घरा पर अखण्ड सौभाग्य देने वाले शिव–पार्वती का प्रतीकात्मक चित्रण हल्दी से करती हैं। शिव–पार्वती की आकृति पुतरा–पुतरिया जैसी ही बनाई जाती है। तुलसी–घरा की पूजा विधि विधान से करके महिलायें उसकी 108 परिक्रमा करती हैं। परिक्रमा की गिनती याद रखने के उद्देश्य से किसी वस्तु को जैसे – इलाइचीदाने, इलायची या लौंग इत्यादि को गिनकर रख लेती हैं। तुलसी अपनी पवित्रता धार्मिकता एवम् विश्वास के लिये सन्स्कृति में सम्माननीय है। सोमवती अमावस्या को शिव–पार्वती से चित्रित तुलसीघरा समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतीक बन जाता है। सुहागिन स्त्री द्वारा की गई प्रदक्षिणा सौभाग्यदायिनी मानी जाती है। इस दिन तीर्थ स्थानों पर जाना तथा वहाँ की नदियों में स्नान करना शुभ

माना जाता है। कार्तिक मास की चतुर्दशी को भी तुलसी घरा पर हल्दी से राधा–कृष्ण के प्रतीकात्मक पुतरा–पुतरियां बनाकर पूजन किया जाता है।

किसी भी सोमवार के दिन पड़ने वाली अमावस्या को सोमवती अमावस्या कहते हैं। इस दिन स्त्री पुरुष स्थानीय तीर्थ में जाकर पूजन करते हैं। महिलाएं तुलसी या पीपल के वृक्ष के श्रद्धा अनुसार या 108 परिक्रमा लगती है। पूजन के पश्चात भोजन ग्रहण करती है।

बान्दा के पास 70 किलोमीटर दूर चित्रकूट में तो इसका विशेष पूजन होता है। इन दिनों भारत सरकार भी ट्रेन की विशेष व्यवस्था करती है और एक्स्ट्रा ट्रेन चलाती है अलावा इसके बसों के फेरे बढ़ा दिए जाते है।

कुछ लोग घर से चित्रकूट तक पैदल या लेट कर लुढ़कते हुए यात्रा करते है।

बुन्देलखण्ड में त्यौहार तो लगभग सभी मनाये जाते हैं। अन्य त्यौहार भी बहुत उल्लास से मनाये जाते हैं। गणगौर, गणेश चौथ, राम नवमीं, अक्षय तृतीया, वट सावित्री व्रत, महालक्ष्मी, होली, बसन्त पंचमी, मकर सन्क्रान्ति आदि अनेक त्यौहार हैं, किन्तु उनमें मूर्ति रख कर या विशेष विधान अनुसार पूजन किया जाता है।

गधा मेला

चित्रकूट के आसपास के पुराने इलाकों में दीपावली के आसपास गधा मेला लगता है जो दीपावली से शुरु होकर तीन दिन मक चलता है। यहां पर इलाके के बहुत अच्छे–अच्छे गधे कारोबारी द्वारा ले जाते हैं 2024 में 2023 में गधों की अधिकतम कीमत ₹5,00,000 लगी थी और लगभग 10000 अलग–अलग नस्ल के गधे भी आए थे सामान्यतः गधों की कीमत 5000 से 50000 तक होती है जिस समय औरंगज़ेब यहां आए आया तो उसको सामान ढोने के लिए गठन की आवश्यकता थी तब एक गधा में लेकर आयोजन किया गया था तब से और अभी तक यह गधा मेला चला आ रहा है।

सन 1670 में औरंगजेब ने जब चित्रकूट और आसपास के इलाकों पर आक्रमण किया तब उसके घोड़े बीमार हो गए थे या अन्य कारणों से मर गए थे। तब सामान लाने ले जाने के लिए गधों की आवश्यकता पड़ी थी। औरंगजेब द्वारा मुनादी कराने पर उसी वक्त से यह गधों का मेला शुरू हुआ। इस मेले की शुरुआत अमावस्या से शुरू हो जाती है और 3 दिन तक चलती है और आसपास के इलाके से बहुत गधे आते है। वर्तमान में प्रति गधा ₹500 का गधा ऑटो टोकन दिया जाता है जिससे काफी आमदनी होती है। धीरे–धीरे यह मशीनीकरण के कारण खत्म होता जा रहा है। मशीनीकरण के कारण गधों की बहुत ज्यादा आवश्यकता नहीं है, इसकी जगह ई रिक्शा मोटरसाइकिल व अन्य वाहनों ने ले ली है।

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

बुन्देलखण्ड में फागों के विविध रूप

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में होली मनाये जाने के अनेक लोक स्वरूप मिलते हैं– यह अत्यन्त रोचक होते है। इनमें डगे की फाग, गुझिया की फाग तथा मटका की फाग विशेष प्रसिद्ध है। यहाँ फाग मनाने की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही बसन्तोत्सव की परम्परा का ही लोक सन्स्करण है।

फाग ईसुरी

कवि इसरो को बुन्देली काव्य का श्रेष्ठ कवि और योग प्रवर्तन कहा जाता है। कवि इसरो ने श्रृंगार रस के साथ–साथ शान्त रस के भी विधा लिखी हुई है। उनकी लिखी हुई फागें होली के अवसर पर गांव चारपालों में आज भी गई जाती हैं, जो कुछ हद तक श्रृंगार रस से ज्यादा ही हैं। इसरो का जन्म 1841 ईस्वी में मऊरानीपुर के निकट में मेंढ़की गांव में हुआ था। इन्होंने अपने प्रेयसी का काल्पनिक नाम रजऊ रखा था और फागुन में फागों में इसी का ही उपयोग किया गया है। उनके द्वारा 360 फागे लिखी गई है कहानी–कहानें में स्वास्थ्य और दार्शनिक रूप का भी उपयोग किया गया है।

डगे की फाग– बुन्देलखण्ड के कुछ क्षेत्रों में डगे की फाग खेली जाती है। इसे डला की फाग भी कहते हैं। इसके लिये गाँव के खुले मैदान में एक मोटी तथा चिकनी बल्ली गाड़ दी जाती है। उस पर तेल पोतकर और चिकना किया जाता है। बल्ली के ऊपरी सिरे पर एक पोटली में गुड़ का डला तथा कुछ रूपये पैसे बांध दिये जाते हैं। एक मोटा रस्सा बल्ली के ऊपरी भाग पर बांधकर नीचे तक लहराता हुआ छोड़ दिया जाता है। गाँव की बलिष्ठ महिलायें इस बल्ली का घेरा बनाकर अपने हाथों में पोले बांस लेकर खड़ी हो जाती हैं। इसके पश्चात् पुरूषों को डगे की फाग खेलने की आवाज लगाई जाती है। जो पुरूष आगे निकलकर आता हैं, उससे बल्ली पर चढ़कर पोटली उतार कर नीचे उतरने को कहा जाता है। जो व्यक्ति पोटली उतारकर नीचे ले आता है, उसे विजयी घोषित किया जाता है। उसे पोटली इनाम में दे दी जाती है। पोटली उतारकर नीचे आने तक का दृश्य बड़ा दिलचस्प होता है।

कालपी के निकट कंहटा नामक ग्राम है। यहाँ कर्दम ऋषि का मन्दिर बना है जिसमें उनकी सुन्दर मूर्ति स्थापित है। इस गाँव में गुझिया की फाग मनाई जाती है। एक ऊँचे मकान के झरोखे में या छत पर कुछ महिलायें आटा तथा मावे (खोया) की बनी गुझियाँ हाथ में लेकर बैठ जाती हैं। गुझियाँ की फाग प्रारम्भ होते ही मैदान में एकत्रित युवक ऊँची कूद की मुद्रा में उछलकर उन महिलाओं के हाथ की गुझिया छीनकर खाते हैं। दीवाल के सहारे चढ़कर गुझिया तक पहुँचना मना है। यदि दीवाल के सहारे कोई युवक चढ़ने का प्रयास करता है, तो वहाँ एकत्रित महिलायें लठ्ठ मारकर भगा देती हैं। जो ऊँची कूद में असफल होकर गुझिया की ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाते हैं, उन्हें निराश होना पड़ता है।

इसी प्रकार कुछ स्थानों पर मटका की फाग होती है। क्षेत्रों में सड़क के दोनों ओर एक वृक्षों या खम्भों से रस्सी बांध दी जाती है। उसी रस्सी के बीच में सड़क के मध्य में एक मटका (मिट्टी का घडा) बांध देते हैं। मटका मँ गुलाल अवीर तथा रूपयों की एक थैली डाल देते हैं। जब फाग शुरू होती है तो युवक हाथ में एक छोटा डंडा लेकर ऊँची कूँद उछलकर, वह मटका तोड़ने का प्रयास करते हैं। जिसके प्रहार से वह मटका टूट जाता है, उसे थैली इनाम में दे दी जाती है। दोपहर तक यह क्रम चलता है। घरों के भीतर रंग–अबीर की होली चलती है।

बुन्देलखण्ड के लोकांचलों में होली का प्रारम्भ दण्ड एवम् ध्वज गाड़ने के साथ माघ शुक्ल पूर्णिमा से हो जाता है। इसे लोक भाषा में होरी कौ डाँडौ लगाना कहते हैं। इसके लिये गाँव के किसी एक खुले स्थान या चौराहे पर एक बांस या बल्ली गाड़कर उसके ऊपरी छोर पर लाल पताका बाँध देते हैं। हल्दी चावल आदि से उसका पूजन करके उसके चारों ओर कांटो तथा झाड़–झंखाड़ की बाड़ लगा देते है। यह झाड़–झंखाड़ मकान, अथवा खेतों, खलिहानों से लाकर डाली जाती है। इस बहाने खेतों खलिहानों से अवांछित गन्दगी भी हट जाती है। इसके पश्चात् प्रतिदिन कुछ कण्डा (उपले) या लकड़ी (नई अथवा पुरानी टूटन) लाकर रखते जाते हैं। यह कार्य होली के कार्य में लगे हुरयारे करते है। कुछ क्षेत्रों में होरी कौ डॉड़ौ होली के आठ दिन पूर्व गाड़ा जाता है। होरी डांड़ो (दण्ड–ध्वज) सामाजिक बुराइयों तथा परस्पर विद्वेष समाप्त करने की सन्कल्पशीलता तथा उस पर विजय का प्रतीक है। कांटे इस मार्ग में पड़ने वाली बाधाओं के प्रतीक है। फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से होलिकाष्टक लग जाता है। इस अवधि में शुभकार्य लोक–वर्जित होते हैं।

जिस दिन डाँड़ौ रक्खा जाता है, उसके अगले दिन से परिवारों में गोबर के बरबूला(बल्ला) पाथने बनाने का काम प्रारम्भ हो जाता है। यह बरबूला मजीरा वाद्य के आकार के होते हैं। उनमें बीच में एक छेद बनाया जाता है। प्रतिदिन घर में बरबूले बनाकर उन्हें सुखाकर माला के रूप में पिरोकर टांगते जाते हैं। फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा की रात्रि में आन्गन में आटा चौक पूर कर उस पर बरबूलों की माला इस प्रकार रखते हैं कि पिरामिडीय आकार बन जाये यानी सबसे बड़ी माला–सबसे नीचे, उससे छोटी उसके ऊपर, यही क्रम ऊपरी छोर तक चलता रहता है। इस आकार को बरबूलों की होली कहते है।

पूर्णिमा की मध्यरात्रि के पश्चात् डांड़े की होरी का ग्रामवासियों द्वारा सामूहिक पूजन करके उसे प्रज्ज्वलित करके होलिका दाह किया जाता है। इसकी कुछ अग्नि प्रत्येक परिवार में ले जाई जाती है, जिससे आँगन में बनी बरबूलों की होली जलाई जाती है। बरबूलों की होली प्रज्वलित करने के पूर्व परिवार का मुखिया उसका विधिपूर्वक पूजन करके होलिकाग्नि से उसको दाह देता है। इस होली की आग में नयी गेहूँ की बालें झुलसाकर खाई जाती हैं। इसी आग में गेहूँ के आटे की कुचइयाँ (छोटे आकार की हाथ से बनी रोटी) बनाकर खाई जाती है।

गाँव के चौराहे पर डांड़े की होली भस्म होने के बाद उसकी भस्म ग्रामवासी मस्तक पर लगाते हैं तथा प्रियजनों पर छिड़कते है। तब तक भोर हो जाती हैं। भस्म फेंकने का यह सिलसिला धूल की होली और कीचड़ की होली में परिवर्तित हो जाता है। इसके साथ ही गाँव में लोग जिसको भी घर के बाहर देख पाते हैं उसे पकडकर गधे पर बैठाकर तथा जूतों की माला पहनाकर फूहड़ काव्य (तुकबन्दी) कहते जाते हैं।

जहाँ डगे की फाग खेलने की परम्परा नहीं है, वहाँ फगवारौ निकालने की परम्परा है। इसके अन्तर्गत गाँव तथा पड़ोसी गान्वों के लोग समूहबद्ध होकर हरमोनियम, ढोलक, मजीरा, तुरही, रमतूला लेकर फागें गाते बजाते निकलते है। फगवारौ का स्वागत गाँव के प्रत्येक घर में होता है। इसकी तैयारी के लिये होली के कई दिन पूर्व से आटे में खोवा भरी गुजियाँ, मोइन डारी पपरियाँ, तथा फाग के लडुवा थालियों में भर भर कर बनाते हैं। फगवारौ के स्वागत उपरान्त फड जमता है। फड़ को फाग–दंगल भी कहते हैं।

चित्र

फड़ के अन्तर्गत–एक बड़े चबूतरे पर या खुले मैदान में दो तख्त डालकर आमने सामने गायक दल बैठते हैं। फड़ पर गायकों तथा कहीं कहीं श्रोताओं के लिये जाजम (स्थानीय छपा फर्श) बिछाते हैं। रमतूला बजाकर कार्यक्रम प्रारम्भ होने की सूचना दी जाती है। ढोल, मजीरा, नगड़िया तथा ढोलक की थाप पर फागों का जबाबी गायन प्रारम्भ हो जाता है। कहीं कहीं बाजौ वाला (हरमोनियम मास्टर) गले में कपड़े से हारमोनियम टांगे हुये चलता है। लोकांचल में हारमोनियम को बाजौ कहते है। गायन प्रारम्भ होते ही आबाल, वृद्ध, बनिता चुम्बक की भांति खिंचे चले आते हैं। कुछ ही देर में मैदान भर जाता है। बचे खुचे नर नारी चारों ओर घेरा बनाकर खड़े हो जाते हैं। फागों के अलावा ख्याल तथा सैरे आदि का भी गायन होता है। फड़ पर जबाबी गायन की परम्परा है। विषयवस्तु, शिल्प और गायकी की शास्त्रीयता पर ही फड़ जीता जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि एक फाग–गायक ने बिना मात्रा की फाग गायी, तो उसका जबाब बिना मात्रा की फाग गाकर ही दिया जा सकता है। यदि एक ने अधर फाग गायी, यानी ऐसी फाग जिसके उच्चारण में परस्पर होंठ न मिलें तो दूसरे को जबाब में अधर फाग ही गानी पड़ेगी। यदि एक अनुस्वारहीन (बिना नुक्ता) की फाग गाता है तो जबाब में वैसी ही फाग गानी पड़ेगी। इन मानकों के जौहरी भी उन श्रोताओं में ही होते हैं। इससे यहाँ की लोक–रूचि के स्तर की सहज कल्पना की जा सकती है। फगवारों की स्मरण शक्ति गजब की होती है। वह स्वयम् आशुकवि हो तो उसका सम्मान अधिक होता है। स्वरचित या किसी भी फागकार की फाग पढ़ने की अनुमति होती है। फाग–साहित्य के अब तक पर्याप्त रूप से प्रकाश में न आने का एक कारण यह भी रहा है कि फगवारे–जबाबी–प्रतिद्वंदिता में अपनी विजय सुनिश्चित करने के लिये अच्छी फागें छपवाते नहीं थे। ताकि वह जन सामान्य की पहुँच में आ जावें। वे ऐन वक्त पर प्रतिद्वंदी को मात देने के लिये ही उनका उपयोग करते थे। ईसुरी चूंकि स्वयम् अपनी फागें फड़ पर यदा कदा ही गाते थे, तथा अपने शिष्यों एवम् मित्रों को फड़ पर गाने के लिये दे देते थे, अतः उनकी फागें सहजता से लोकव्याप्त हो सकीं। पहले, पूरे के पूरा गाँव घर खुला छोड़कर फड़ के आस पास इकट्ठा हो जाता था। फड़ दिन भर और रात रात भर चलता था। भोजन पानी तक की चिन्ता नहीं रहती थी। सन्गीत की स्वरलहरी जैसे जैसे गतिमय होती जाती थी, श्रोता समुदाय हर्षोन्मत्त होता जाता था।

फागों के इस फड़ या दंगल का विशेष आकर्षण अटका की फ़ाग यानी प्रश्नोत्तरी फाग होती हैं। इसमें एक गायक फाग के माध्यम से प्रश्न पूछता है, दूसरा फागकार उसका उत्तर फाग में ही देता है। कभी वह प्रति प्रश्न भी करता है। इस उत्तर प्रत्युत्तर से रोचक वातावरण बन जाता है। विजयी फागकार को अपने अटका का जबाब तुरंत

फाग में देना होता है। कुछ युवक थालियों में अभ्रक–मिश्रित गुलाल भरकर, श्रोताओं की ओर उड़ाते थे। कुछ युवक टेसू (पलाश) का रंग पिचकारियों में भरकर फड़ पर आने जाने वालों पर डालते रहते थे। फड़ पर बैठने के बाद रंग नहीं डाला जाता था। फड़बाजी की इस परम्परा से लोक साहित्य तथा सन्स्कृति के अविरल प्रवाह को गति मिली है। अब यह फड़–परम्परा उतार पर है। फाग और ख्याल के बजाय फिल्मी गानों के कैसेट हावी होते जा रहे हैं। यह एक चिन्ताजनक स्थिति है।

लोग होली के कई दिन पूर्व से टेसू के फूल बीनकर उन्हें पानी में भिगोकर रखते थे। एक दो दिन बाद उन को उबालकर, ठंडा हो जाने पर उसमें चूना मिला देते थे। सुन्दर बासन्ती रंग उतर आता था, हल्की सी मादक सुगन्ध के साथ। जो धनिक वर्ग बागों में या खेतों अथवा रास्तों के किनारे टेसू के फूल बीनने में हीनता का अनुभव करते थे, वह बाजार में, ग्रामीणों द्वारा बैलगाडियों पर विक्रयार्थ लाये गये टेसू के फूल खरीदकर घरों में रंग उतारते थे। किशोरवय तक अपनी जन्मभूमि के बाग–बगीचों तथा पगंडडियों के किनारे लगे टेसू के फूल बीनकर उनसे रंग उतारकर जाने कितने बसन्त बौराये होंगे।

टेसू के रंग उतारने का यह सिलसिला, इस लोकांचल में बसन्त पंचमी के पूर्व से ही प्रारम्भ हो जाता था। जिन घरों में टेसू का रंग नहीं उतारा जाता था, वह बाजार से बसन्ती रंग खरीद कर उसमें अपने वस्त्र रंगते थे। बसन्त पंचमी के दिन बसन्ती रंग में रंगे कपड़े पहनना पारंपरिक अनिवार्यता थी। पुरूष हो या महिला, बच्चे हों या बूढ़े बसन्ती परिधान पहिन कर बसन्त की पूजा करते थे। इसमें गेहूँ जौ की बालियों को पूजना और परस्पर भेन्ट देना सम्मिलित होता था। खेतों में सरसों के फूले पीले फूल और गली–घर–आन्गन में बासन्ती परिधान, कुल मिलाकर, बसन्त बुन्देली धरती पर उतर आता था। बसन्त की पूजा का यह पर्व बसन्तोत्सव युगो–युगों में परिवर्तित होता हुआ अपना स्वरूप बदलता जा रहा है।

वात्स्यायन रचित कामसूत्र के साधारण अधिकरण में नागरक वृत्त प्रकरण(सामान्य नागरिक जीवन सम्बन्धी चौथा अध्याय) में उद्यानयात्रा का विवरण है। उसमें गाँव के बाहर किसी उद्यान में प्रियजनों के साथ जाकर कामदेव के दर्शन करने ओर बांस की पिचकारियों मे पलाश का रंग भरकर प्रियजनों पर डालने की उदकक्ष्वेडिका परम्परा है। कोच नगर में रामकिशुन की बगिया नामक एक सुरम्य वाटिका है। इस वाटिका में कामारि भगवान शिव का समाधिस्थ विग्रह स्थापित है। चारों और पुष्प–लता वल्लरियों का मनमोहक दृश्य, कूप और उद्यान। आगंतुकों को बैठने के लिये पत्थर की बैन्च है। होली की प्रतिपदा को सायंकाल लोग सजधज कर प्रियजनों के साथ इस वाटिका में जाते थे। भगवान शिव कं दर्शन करके अबीर गुलाल लगाते, भांग या अन्य प्रसाद लेते, फिर वाटिका में विचरण करते थे। यद्यपि वहाँ आगंतुकों पर रंग डालने का निषेध था तथापि कुछ बालक पिचकारियों से टेसू का रंग डालने में उत्सव का आनंद मनाते थे।

बुन्देलखण्ड के कुछ क्षेत्रों में चैत्र शुक्ल षष्ठी को टिसुआ–छठ के नाम से मनाया जाता है। उस दिन टेसू के वृक्ष तथा पुष्पों की पूजा करने का विधान है। ऐसा प्रतीत होता है कि टेसू की आरोग्यदायी–प्रकृति के कारण मनीषियों ने उसे पूज्य–कोटि में रखकर, इस लोक पर्व के माध्यम से, जन सामान्य से जोड़ने का प्रयास किया है।

भारतीय वाड्गमय के अनुसार प्राचीन काल में बसन्तोत्सव के समय अभ्यूष खादनिका या नवान्नेष्टि के अन्तर्गत नवीन अन्न भूनकर खाने की परम्परा थी। वह परम्परा आज तक बुन्देलखण्ड में इस रूप में जीवित है।

हेमाद्रिकृत निर्णय सिन्धु में होलिकादहन के पश्चात् भोर में होलिका विभूति वन्दन के अन्तर्गत होलिका की विभूति (भस्म) धारण करने का उल्लेख किया गया है। बुन्देलखण्ड में विभूति को भभूत कहते हैं। यहाँ यज्ञो की विभूति (भभूत) धारण करने की लोक–परम्परा है। उसी की भांति, लोग होली की विभूति प्रियजनों के मस्तक पर लगाते होंगे तथा उंगलियों में बची शेष भस्म उस व्यक्ति पर छिड़क देते होंगे। यह परम्परा शनैः शनैः विभूति से बढ़कर धूल पर आ गई और उसके तरलरूप कीचड़ की होली परम्परा विकसित हुई होगी। भविष्य–पुराण में बसन्तोत्सव में गाली प्रदानम् की भी चर्चा है। होली के अवसर पर फूहड–सम्वाद, फूहड़ काव्य–रचना तथा फूहड़ फागों के साथ हास परिहास–सम्मेलन (महामूर्ख सम्मेलन) इसी परम्परा का विकसित स्वरूप हैं।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड में फाग गायन (नृत्य–सन्गीत), रंग को पिचकारियों में भरकर प्रियजनों पर डालने (उदक्क्ष्वेडिका), धूल या कीचड की होली खेलने (धूलवंदन), गाली देने अथवा फूहड़ सम्वाद कहने (गाली–प्रदानम्), होली के अवसर पर गेहूँ अथवा जौ की बालें भूनकर खाने (अभ्यूषखादनिका या नवान्नेष्टि) की परम्परायें प्राचीन काल में बसन्तोत्सव की उत्सवमयी परम्परा का युग–युगों में काल के प्रवाह में परिवर्तित हुआ लोक सन्स्करण है।

त्योहार कैसे मनाते है Festival Celebration

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

प्राचीन काल में बसन्तोत्सव बसन्त पंचमी (माघ शुक्ल पंचमी) से प्रारम्भ होकर चैत्र मास पर्यन्त चलता था। इसमें फाल्गुन माह मुख्य होने के कारण इसे फल्गु या फाग कहा गया। फगुवाना मदमस्त होने का मुहावरा बन गया है। बुन्देली लोक जीवन में इस रसवंती परम्परा को वर्ष पर्यन्त उल्लासमय क्षणों के साथ जोड़ने की दृष्टि से विवाह में फाग की रस्म सम्मिलित की गई है। इसके अन्तर्गत कन्यापक्ष के पुरूषों तथा महिलाओं द्वारा वर पक्ष के पुरूषों पर रंग डालना, मुंह रंगना तथा वर पक्ष द्वारा इसका नेग देना फाग रस्म में आता है। विवाह किसी भी ऋतु में हो फाग की रस्म विवाह कार्यक्रम का अविभाज्य अंग है।

बुन्देली महिलाओं का लोक पर्व– कार्तिक नहान

वैष्णवी आभा से दीप्त लोक जीवन पर राम और कृष्ण का व्यापक प्रभाव है। यहां के अधिकान्श सन्स्कार राम–सीता तथा कृष्ण–राधा के जीवन प्रसन्गो पर आधारित है। प्रत्येक परिवार मे जन्मा बालक लोक गीतों की धुनों में राम या नन्दलाल है। वह कौशल्या या यशोदा की कोख से जन्मता सा लगता है। शिशु जन्म पर यहां अवध या ब्रज का सा उल्लास दिखता है। लोक मंगल के क्षणों में बुन्देली धरती पर ब्रज और अवध अवतरित हो जाता है।

इसी वैष्णव परम्परा में बुन्देली महिलाओं का लोक पर्व कातिक नहान मन वांछित फल पाने की लालसा से मनाया जाता है। कृष्ण भक्त से सराबोर वह सान्स्कृतिक अनुष्ठान जहां एक ओर अध्यात्म तथा धर्म से प्रेरित है, वहीं दूसरी ओर लोक कलाओं की साधना का अनुपम उदाहरण है। इसके अन्तर्गत कार्तिक माह में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी से शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तक लोक कला के विविध अंगों के साथ भक्ति का अविरल प्रवाह देखा जा सकता है।

बुन्देली लोक सन्स्कृति के सम्यक अनुशीलन की दृष्टि से इस पर्व से जुड़े लोक गीतों, लोक कथाओं, विविध लोक–कलाओं तथा आचार–विधान का विस्तृत अध्ययन स्वतन्त्र शोध का विषय है। विहंगम दृश्य प्रकाश में निम्न पाया गया है। लगभग एक महीने पर्यन्त चलने वाला यह लोक पर्व बुन्देली महिलाओं के संयम, तप, कला–साधना तथा लोक रंजन का समन्वित स्वरुप प्रस्तुत करता है।

इस लोक पर्व में किसी गान्व या मुहल्ले की महिलायें टोलियां बनाकर भाग लेती हैं। इन्हें कतकियारी तथा टोली की प्रत्येक महिला को सखी कहते हैं। बुन्देलखण्ड में ब्रह्म मुहूर्त में कतकियारियों के झुण्ड नंगे पैर प्रभाती गाते हुए हर गली में यत्र–तत्र देखे जा सकते हैं। इन कतकियारियों की कठोर आचार सन्हिता है। नित्य भूमि पर शयन, ब्रह्म मुहूर्त मे सूर्योदय के लगभग दो–तीन घण्टे पूर्व जागरण, बिना तेल या साबुन के स्नान करना होता है। केशों में कंधी, भोजन में नमक तथा पति समागम वर्जित है। यदि कोई कतकियारी विशेष परिस्थितियों में पति सन्सर्ग कर लेती है तो उसे सखियों के समक्ष अपराध स्वीकार करना पड़ता है। कुछ सांकेतिक वाक्यो यथा कुत्ता छू गओ, कुरा फूट गये आदि कहने से इस दोष का परिमार्जन कर लिया जाता है। अपराधिनी की आत्म स्वीकृति के बाद सभी सखियां उस पर व्यन्ग्य बाण छोड़ने से नहीं चूकती हैं।

इस लोक पर्व का श्रीगणेश कार्तिक कृष्ण चतुर्थी (गणेश चौथ), जिसे करवा चौथ के नाम से जाना जाता है, के दिन से होता है। इसमें भाग लेने की इच्छुक महिलायें उस दिन एक वस्त्र गांठ बांधकर कातिक नहाने का सन्कल्प लेती हैं। यह गान्ठ अनुष्ठान पूर्ण होने के बाद खोली जाती है। इस दिन गणेश व्रत रखा जाता है। जो महिलायें करवा चौथ का व्रत रखती हैं, वे उसके साथ ही गणेश व्रत तथा गान्ठ बांधने का विधान करती हैं। जो महिलायें पूरे माह का व्रत विधान पूरा नहीं कर पाती हैं, वे सन्क्षेप में नहाती हैं। वे इच्छा नवमी (कार्तिक शुक्ल नवमी) को आंवले के वृक्ष के नीचे गान्ठ बांधकर सन्कल्प लेती हैं तथा शुक्ल पक्ष की दशमी से चतुर्दशी तक पचबिकियां मनाती हैं। इन तिथियों में उन्हें व्रताहार रखकर कतकियारियों की आचार संहिता का पालन करना अनिवार्य है।

कतकियारी महिलायें ब्रह्म मुहूर्त में किसी तालाब, नदी, कुंए या अन्य जलाशय पर जाकर सामूहिक स्नान करती है। जहां यह सुविधायें नहीं हैं वहां घर पर स्नान करके कातिक–पूजा के निर्धारित स्थान पर आना होता है। कातिक पूजा का विशेष आचार विधान है। किसी मन्दिर या देव चबूतरा पर एक छोटी चौकी, जिसे जनभाषा में चौंतरिया कहते हैं, बनाई जाती है। उस पर नित्य सफेद वस्त्र बिछाकर रेत या मिट्टी से राधाकृष्ण, सूरज, चांद तथा बिरवा (तुलसी) के धूलि चित्र बनाये जाते हैं। तत्पश्चात् लोक गायन होता है।

भोर के सन्नाटे को चीरते हुए इन कतकियारियों की मधुरिम स्वरलहरी सर्वप्रथम भगवान कृष्ण का जागरण तथा आह्वान करती हैं। यथा–

त्योहार कैसे मनाते है **Festival Celebration**

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

उठो मेरे कृष्ण भये भुनसारे गऊअन के बन्ध खोलो सकारे
उठकें कन्हैया प्यारे मुकुट संवारे सुघर राधिका दोहन ल्याये। उठो मेरे ...
काहे की दोहन, काहे की लोई? काहे की हर गारें खोई ?
सोने की दोहन, पाटा की लोई पीताम्बर हर गारें खोई।
उठो मेरे कृष्ण भये भुनसारे

पूजा विधान के विभिन्न सोपानों से भरपूर यह लंबा गीत कई चरणों में पूरा होता है। उसके बाद दूसरी सखी तान छेड़ती है–

अब मन लागा, अब चित लागा,
सेवरिया न चूकियों जसुदा के नन्दन आरती।
जो मैं ऐसी जानती कि आहें आज कन्हाई,
गैंयन के गोबर मंगाउती, ढिंग दै आन्गन लिपाउती।
मुतियन चौक पुराउती, पटरी देती डराय। जो मैं ऐसी जानती ...
सोने के कलश मंगाउती, जल तौ लेती भराय,
पूजा की थारी लगाउतीं, आरती लेती उतार। जो मैं ऐसी जानती ......
धो धो गेंडन पिसाउत्ती, कपड़न लेती छनाय।
छप्पन भोजन बनाउती, रुचरुच भोग लगाउती। जो मैं ऐसी जानती ...
सोने के पलंग बिछाउत्ती, उर हरि को लेती पोड़ाय
हरि के चरन दबाउती, मन चाहत फल पाउती। जो मैं ऐसी जानती ...

कृष्ण के आने की सम्भावना के साथ ही उनके लिये भवन बनाने को कारीगर बुलाने का गीत गाया जाता है–

गग जमुन तम रेवता में, बारु रेवता कीरू
तबई की थप थप होय अहो राम जी
बनइयो श्री कृष्ण जू को बैठका बैठका
रानी रुकमनी की दालान अहो राम जी।

कृष्ण के महल अधिष्ठापन के पश्चात् सखियां कातिक नहान के आचार विधान पर आधारित एक लोक गीत गातीं हैं–

कहत राधिका सुनो कन्हैया, कातिक कैसे अन्हैये।
राधे दामोदर बन जइयें।
राधे दामोदर ....
नित्य सबेरें भोरई उठकें, सखियन टेर लगइयें।
राधे दामोदर ....
तेल तिली से त्यागन करिये, कोरे तटन नहइयें।
राधे दामोदर ....
नौन तेल को त्यागन करिये, घिया गकरियां खइये।
राधे दामोदर ....
खाट पिड़ी कौ त्यागन करियें, भू पै सैन लगइयें।
राधे दामोदर ...

इसके साथ ही सखियों की लोक रागिनी राधाकृष्ण के प्रसन्गो को स्मरण करती है।

नैंक पठै दो तिम जू कों मैया, गिरधारी मोरे हिरदै बसत है।
सो उनई के हात लगै मोरी गइया। नैंक पठै दो...
इतनी सुन की जसोदा मुस्क्यातीं, जाओ जाओ लाल, लगा आओ गैया।
नैंक पठै दो...

त्योहार कैसे मनाते है **Festival Celebration**

इन कोकिल कंठी स्वर लहरियों के पश्चात् लोक कथाओं का सिलसिला प्रारम्भ होता है। गणेश जी, दस दिन के देवता विसरम्भो, तुलसी, वाल्मीकि, सत्यनारायण, रामचर्या आदि की कहानियां सखियां आपस मे ही कहती सुनती हैं। इस बीच पूरब में सूरज की पौ फटते देखकर सखियां गाने लगती हैं—

उठौ सूरज देव कलाधारी
कश्यप जू के पुत्र धनुषधारी। उठौ सूरज ....
उठौ री सूरज जू की मैया, लाल कौं जगा देओ।
सारी दुनियां है अंधियारी। उठौ सूरज ....
उठौ री सूरज जू की मैया दहिया बिलोऔ।
छारें खड़ी एक छछियारी। उठौ सूरज ....
उठौ रे पंछीड़ा भैया मारग चलियें।
सिर पै गठरी है भारी। उठौ सूरज ...
आधी नगरी में बम्मन, बनियाँ
आधी नगरी में प्यारी घरवारी। उठौ सूरज ....

सूर्य जागरण का गीत पूरा होते ही गान्व के पन्डित जी आ जाते है। वे वहीं चौंतरिया पर विराजमान भगवान (धूल आलेखन) का पूजन विधि पूर्वक कराते हैं।

आचमन, पान–समर्पण, दर्पण, झूला के बाद कातिक व्रत का महात्म्य सुनाते हैं। फिर सभी सखियां भगवान की परिक्रमा करती हैं। नित्यप्रति कोई एक सखी क्रम से भगवान को अपने घर ले जाकर जलाशय में विसर्जित कर देती है। यह क्रम दीपावली के पूर्व चतुर्दशी (नरक चौदस) तक चलता है। कतकियारियां उसी दिन मौन व्रत रखकर करई तमरियां किसी जलाशय में विसर्जित कर देती हैं। यह इस बात का प्रतीक है कि श्रीकृष्ण यमुना में कहीं छिप गये हैं। अगले दिन से घाटों घाटों श्रीकृष्ण को खोजने का प्रयास सखियां करती हैं। कतकियारियां कृष्ण को ढूंढने विभिन्न नदी, तालाबों आदि पर जाती हैं, वहीं स्नान करती हैं। वहां सखी छेडने का लोक नाट्य होता है। इसके अन्तर्गत दो टोलियां बनती हैं–एक पुरुषों की तथा दूसरी कतकियारियों की। पुरुष गोप तथा सखा बनकर सखियां छेड़ने, माखन छीनकर खाने आदि का अभिनय करते हैं। सखियों की छेड़ाखानी की यह लोक नाट्य लीलायें अत्यन्त रोचक होती हैं। यह लोक नाट्य परम्परा भैया दूज तक चलती है। उस दिन श्रीकृष्ण मिल जाते हैं। उसी दिन उसी चौकी पर राई दामोदर की स्थापना करके नवमी तक पूजन का क्रम चलता है।

दशमी से चतुर्दशी तक पचबिकियां मनाते हैं। इन दिनों कतकियारियां व्रत रखतीं तथा फलाहार ही लेती है। चतुर्दशी के दिन भीतपाखे का डला चढ़ाते हैं इसके अन्तर्गत मकान के विभिन्न अंगों यथा खपरैल, दरवाजे, खिडकियां, दीवालें आदि को व्यन्जन पकवान के रुप में बनाते हैं। भगवान के आभूषणों के भी पकवान बनाये जाते हैं। चतुर्दशी के दिन में विष्णु तुलसी के विवाह का आयोजन किया जाता है। इसमें धूमधाम से बैंडबाजों के साथ बारात निकाली जाती है। विवाह की डलिया के रूप में भीत पाखे का डला देते हैं। भीगी पलकों से दान दहेज के साथ तुलसी की विदा होती है। अनेक निःसन्तान महिलायें कन्यादान का पुण्य प्राप्त करने के लिये तुलसी का विवाह का आयोजन करती है।

पूर्णिमा की रात्रि में कतकियारियां किसी तालाब, नदी, नहर या जलाशय पर एकत्र होती हैं। वे कागज की नाव बनाकर उस पर आटा के कुछ प्रज्ज्वलित दीपक रखकर उस नाव को जलाशय में प्रवाहित करती हैं। पूर्णिमा की चांदनी के उज्ज्वल प्रकश में सैकड़ों–हजारों दीपकों का झिलमिल प्रकाश अद्भुत दृश्य उपस्थित करता है। पूर्णिमा को कतकियारियां निराहार व्रत रखती हैं। अगले दिन ग्वाल–चबैनी (भीगे चना, लइया, भूंनी हुई मूंगफली आदि का मिश्रण) बांटकर वे अन्न ग्रहण करती हैं।

इस प्रकार कातिक नहान का लोक पर्व पूरा हो जाता है। महिलाओं में अधिक से अधिक सन्ख्या में कातिक नहाने की ललक होती है। तप–साध्य तथा व्यय–साध्य होने के बावजूद अनेक महिलायें ग्यारह तथा इक्कीस कातिक नहाने का सन्कल्प करती हैं। जिस वर्ष अधिमास पडता है, उस वर्ष के कातिक नहान को विशेष महत्व दिया जाता है।

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

<u>टेसू व सुआटा</u>

लोक परम्पराओं में गाया जाने वाला एक लोक गीत है। डा0 रवीन्द्र भ्रमर द्वारा हिन्दी साहित्य कोश में दी गयी टिप्पणी के अनुसार यह लोक गीत ब्रज में भी लोक प्रिय एवम् प्रचलित है। यह गीत किसी टेसू नामधारी वीर पुरूष की स्मृति में गाया जाता है जो उसके वैभव, शौर्य, अड़ियलपन तथा जबरन चौथ बसूलने की प्रवृत्ति का सन्कलित चित्र प्रस्तुत करते हैं। टेसू के मूल स्थान का उल्लेख इतिहास ग्रन्थों में नहीं मिलता है। किन्तु यह निश्चित है कि उसके शौर्य प्रसन्ग दूर–दूर तक चर्चित रहे हैं तभी तो वह ब्रज से बुन्देलखण्ड तक अपने स्मृति–चिन्ह छोड़ गया।

बुन्देली लोक परम्परा में सुआटा नामक एक खेल है जिसे किशोर–किशोरियाँ एक माह तक खेलते हैं। इसी के अन्तर्गत शारदीय नवरात्रि से शरद पूर्णिमा तक यह गीत गाया जाता है। यहाँ सुआटा की परम्परा पर भी संक्षिप्त प्रकाश डालना आवश्यक है। सुआटा बुन्देलखण्ड के किशोर–किशोरियों का क्रीड़ात्मक उपासना विधान है जिसे बुन्देली सन्स्कृति का विशिष्ट लोकोत्सव कहा जा सकता है। यह भाद्रपद पूर्णिमा से आश्विन पूर्णिमा (शरद पूर्णिमा) तक पाँच चरणों में पूरा होता है।

1. सुआटा के प्रथम चरण में मामुलिया खेली जाती है। यह किशोरियों का खेल है जो भाद्रपद पूर्णिमा से आश्विन कृष्ण अमावस्या तक चलता है। इस अवधि में किशोरी बालिकायें पूर्वाभिमुखी दीवाल पर एक आयताकार आलेख बनाती है। जिसके चारों ओर बेलबूटे तथा अन्दर ऊपर की ओर दोनों कोने में सूर्य तथा चन्द्र चित्रित होते हैं। सायंकाल किशोरी बालिकायें झुण्ड बनाकर घरों से निकलती हैं तथा बेर या बबूल की कांटेदार टहनी लेकर उसे पुष्पों से सजाकर, दुलहिन सा बनाकर गीत गाती हुई गली–गली घूमकर जंगल की ओर जाकर सूर्यास्त के बाद इस टहनी को, जिसे सज्जित रूप में मामुलिया कहते हैं, प्रतिदिन किसी जलाशय में विसर्जित कर दिया जाता है। तत्पश्चात् वे किशोरी बालिकायें उक्त वर्णित सुआटा आलेख के पास एकत्रित होती हैं तथा गाती हुई उस आलेख पर गोबर की थपियाँ चिपकाती है। तत्पश्चात् चन्द्रमा को साक्षी मानकर तथा वन्दन करके अपने–अपने घरों को लौट जातीं हैं। प्रातः वे थपियाँ उसमें से निकालकर एकत्रित रख ली जातीं है तथा अन्तिम दिन उन थपियों को जलाशय में विसर्जित कर देते हैं।

2. सुआटा के द्वितीय चरण में नौरता खेल होता है। यह आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से अष्टमी तक नवरात्रि में चलने के कारण नौरता कहलाता है। इसके अन्तर्गत सुआटा नामक दैत्य राजा की प्रतिमा गोबर से बनाकर रत्नों की प्रतीक कौड़ियों से उसे अलकृंत करते हैं तथा प्रतिदिन उस दैत्य प्रतिमा को दुग्ध स्नान कराया जाता है एवम् गौरी प्रतिमा स्थापित करके उसकी भी नित्य पूजा की जाती है। यह पर्व उस दैत्य की विवशतापूर्ण पूजा, उससे मुक्ति हेतु गौरी की प्रार्थना का प्रतीक है। अष्टमी को सामूहिक भोज <u>भसकूँ</u> होता है जिसमें किशोर–किशोरियाँ सम्मिलित होते हैं। बालिका का विवाह हो जाने के बाद उसे सुआटा खेल से मुक्ति लेने हेतु सुआटा उजाना पड़ता है। जो बालिकायें सुआटा खेलती रहीं हैं वे विवाहोपरान्त पड़ने वाले इस लोक पर्व में नवमी के दिन सुआटा उजाती है।

3. तृतीय चरण में बालक टेसू खेल खेलते हैं। यह आश्विन शुक्ल अष्टमी से शरद पूर्णिमा तक चलता है। यही टेसू खेल तथा उसे खेलते समय गाया जाने वाला लोक गीत है।

4. चौथे चरण में बालिकायें नवमी से चतुर्दशी तक <u>झिंझिया</u> खेलती हैं। इसे <u>ढिरिया</u> भी कहते है। मिट्टी के एक घड़े में उपरी भाग में सैकड़ों छेद करके, घड़े के अन्दर अनाज तथा उसके ऊपर प्रज्जवलित दीपक रखकर ढिरिया बनाते हैं। इसे लेकर किशोरियाँ द्वार–द्वार जाकर पैसा या अनाज माँगती हैं।

5. पाँचवें चरण में ये बालक–बालिकायें मिलकर टेसू तथा झिंझिया (ढिरिया) का ब्याह रचाते हैं। बालक टेसू की बारात धूम धाम से लेकर झिंझिया के घर जाते हैं। महिलायें झिंझिया नृत्य करतीं हैं। सारी वैवाहिक रस्में पूरी होकर खेल समाप्त हो जाता है।

सुआटा नामक एक दैत्य किशोरी कन्याओं को परेशान करता था। जब वे सहेलियों के साथ वनविहार को जातीं तो वह दैत्य उन्हे परेशान करता, छेड़ता तथा पूजा करने को बाध्य करता था। बालिकाये चन्द्रावलि तथा सूरजबलि नामक धर्म–भाइयों से रक्षा की याचना करतीं तथा उनके सन्रक्षण में सुरक्षित घर पहुँचने की अनुमति लेकर वनों से चलतीं थीं। फिर भी दैत्य की छेडाखानी जारी थी। कन्याये माँ गौरी से भी प्रार्थना करतीं थी–उस दैत्य से मुक्ति के लिये। इसी बीच टेसू नामक वीर का उदय होता है। वह सुआटा को परास्त करके झिंझिया के साथ ब्याह रचाता है। विवाह के पश्चात् सुआटा का अंग–प्रत्यंग लूटा जाता है, हाथ पैर तोड़कर फेंक दिये जाते है। उसके

रत्नालंकृत आवरण तथा आभरण की प्रतीक कौड़ियाँ लूटकर लोग घर ले जाते है। विजय पर्व पर अर्जित सम्पत्ति की प्रतीक यह कौड़ियाँ को तिजोरी में रखना लोग शुभ मानते हैं।

टेसू बंगाल में धान की फसल आने का प्रतीक है, वहाँ वह धान से बनाते हैं तथा प्रकारान्तर से बंगाल में भी यह खेलते है। टेसू व्यक्तिवाचक सन्ज्ञा है, अतः शब्द व्युत्पत्ति के विस्तार में जाना प्रासंगिक नहीं है।

बुन्देलखण्डी लोक गीतों मे उपासना के स्वरूपों में जिन तीन किंवदंतियों की चर्चा की है उनमें से एक के अनुसार टेसू राक्षस सुआटा राक्षस तथा उसकी पुत्री ढिरिया(झिंझिया) को सताता था। अन्त में समझौता हुआ और सुआटा को टेसू के साथ झिंझिया का विवाह करना पड़ा। अभी भी टेसू खेलने वाले लड़के चोरी–छिपे सुआटा नामक राक्षस के हाथ पैर तथा नाक–कान काट लेते है।

लोक कथाओं में पात्रों की स्वरूप भिन्नता की जो प्रवृत्ति देखने को मिलती है, उसका प्रभाव टेसू पर भी है। उपर्युक्त दो लोक कथाओं को ही लें। एक में टेसू रक्षक के रूप में है, दूसरे में प्रेमासक्त। सत्यता कुछ भी हो किन्तु यह लोक कथा चिरकाल से किशोर–किशोरियों के मनोरंजन तथा विवाह सन्स्था संबन्धी ज्ञानवर्द्धन का व्यवहारिक साधन रही है।

कुछ लोग टेसू को लोक देवता के रूप में परिगणित करते हैं किन्तु हिन्दुओं के देवी देवताओं में कहीं उनका नामोल्लेख नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोक जीवन में जो प्रेरक पुरूष के रूप में जन स्वीकृति प्राप्त कर सके वे लोक देवता पद पर प्रतिष्ठित हो गये। बुन्देलखण्ड के गाँव–गाँव में लोक देवता हरदौल अपने आदर्श कृतित्व के कारण लोक व्याप्ति पा सके। सम्भव है, टेसू को लोक देवता मानने वालों की उक्त धारणा रही हो किन्तु टेसू की पूजा गंभीर पूजा विधान में नहीं होती है। अपितु खेलों में ही उनकी चर्चा आती है, अतः उनकी गणना लोक देवता के रूप में करना उचित नहीं है। दूसरी ओर हरदौल बुन्देली लोक सन्स्कृति में एक अनिवार्य देवता हैं जो शुभ कार्यो के प्रारम्भ से नवदंपत्ति के गृह प्रवेश तक सर्वत्र पूजित, वंदित एवम् गाए जाते हैं।

टेसू गीत तथा खेल की अवधि शारदीय नवरात्रि से आश्विन पूर्णिमा तक है। कहीं यह पूरी नवरात्रि कहीं अष्टमी से चतुर्दशी तथा कहीं नवमी से पूर्णिमा तक खेला जाता है। किन्तु नवरात्रि में प्रारम्भ होने के कारण साहित्यकारों ने इसे शारदीय नवरात्रि में गाया जाने वाला लोक गीत माना है। हिन्दी साहित्य कोश तथा सम्मेलन के मानक कोश में टेसू गायन की अवधि यही मानी गयी है। शोध प्रबन्धों में यह लिखना त्रुटिपूर्ण एवम् भ्रामक है कि टेसू पितृपक्ष में बालकों द्वारा सामूहिक रूप से खेला जाने वाला मनोविनोदात्मक खेल है। पितृपक्ष में टेसू गाने की परम्परा कहीं देखने–सुनने या पढ़ने को नहीं मिलती।

टेसू खेलते समय बालक बांसों की खपचियों से बनी एक पुरुषाकृति हाथों में लेकर चलते हैं। इसे ही टेसू कहते है। कहीं–कहीं इसे पुतले का रूप देकर पूर्ण वीरवेश में हाथों में तीर कमान अथवा तलवार लिये हुये बनाते हैं। इसके सिर पर मुकुट या साफा तथा शरीर पर राजसी अलन्करण होता है। किन्तु कहीं–कहीं केवल तीन बांसों की खपचियों पर एक सिर मात्र रखकर घुमाते हैं। जनश्रुति है कि कृष्ण द्वारा बब्रुवाहन को मूर्ख बनाने की स्मृति में टेसू खेला जाता है। कहा जाता है कि महाभारत कालीन योद्धा बब्रुवाहन को मरणोपरान्त (शमी वृक्ष पर रखे अपने सिर से) महाभारत युद्ध देखने का वरदान मिला था। इस कथानक के रूप में तीन लकड़ियाँ शमी वृक्ष तथा उस पर रखा सिर बब्रुवाहन का प्रतीक है। कुछ सन्दर्भो के अनुसार उक्त कथानक बर्बरीक से सम्बन्धित है न कि बब्रुवाहन से।

टेसू खेलने में किशोर बालक एक झुण्ड के रूप में टेसू का पुतला लेकर सड़कों, गलियों तथा मुहल्ले में निकलते हैं। उसके शौर्य गीत गा–गाकर द्वार–द्वार घूमकर पैसा अथवा अनाज उगाहते हैं। पूर्णिमा के दिन सन्चित अनाज का नकदीकरण करके टेसू का विवाह सम्पन्न कराते हैं।

लोक गीतों में टेसू यद्यपि एक उद्धारक के रूप में चित्रित है किन्तु बुन्देली लोक जीवन में वह बने–ठने हास्यास्पद दिखने वाले व्यक्ति का पर्यायवाची बन गया है। लोग ऐसे व्यक्ति को देखकर कहने लगते है, वह टेसू सा लगता है।

टेसू के लोक गीत अनादि अनन्त है। न उनका प्रारम्भ प्रामाणिक हैं, न अन्त। तमाम सारी ऊटपटांग बातों एवम् मनोविनोदी प्रसन्गों को भी इनमें जोड़कर द्रोपदी के चीर–सा लंबा करते बालक थकते नहीं है। उनमें टेसू गीत प्रारम्भ करते ही आशु कविता की प्रतिभा जाग जाती है। परवर्ती पृष्ठों में इस लोक गीत के जो उद्धारण दिये हैं वे साहित्य के मूल्यांकन(साहित्य के मूल्यांकन– वे जो स्वकथित स्वघोषित कथित साहित्यकारों द्वारा साहित्य का मूल्यांकन

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

या या कथित पी एचडी धारक स्वकथित स्वघोषित साहित्य पोषी) की दृष्टि में घटिया लगें, बच्चों को वही बोलना है जो वे देखते है। स्वकथित स्वघोषित कथित साहित्यकारों द्वारा साहित्य प्रदर्शन व बच्चों के यथार्थपरक रूप में प्रदर्शन, उन्हीं के कारण उनकी प्रस्तुति भी आवश्यक है। ऊटपटांग तथा सन्दर्भहीन(समाज के आइना को) बातों को भी बालक किस प्रकार रोचकता के साथ प्रस्तुत करते हैं, यह समझना इस गीत के मनोविनोदात्मक लेकिन सत्य पहलू को उजागर करने के लिये, आवश्यक है। अलग–अलग स्थानों तथा अलग–अलग झुण्डों द्वारा गये जाने वाले लोक गीतों को समग्र रूप में रख कर ही टेसू की समन्वित तस्वीर सामने आती है। अनेक लोक गीतों के पाठों में कुछ प्रारम्भिक पन्क्तियां टेसू के शौर्य तथा वीरवेश की झलक प्रस्तुत करती हैं–

टेसू आये वानवीर, हाथ लिये सोने का तीर।
एक तीर से मार दिया, राजा से व्यवहार किया।
नौ मन पीसें, दस मन खांय घर घर टेसू माँगन जांय।
पड़वा बोले आँय, आँय, आँय।

एक गीत में कुछ वर्णन इस प्रकार आता है–

टेसू राय जब घण्ट बजायें, नौ नगरी दस गाँव बसायें।
टेसू राय की सात बहुरियाँ, नाचें कूदें चढें अटरियाँ।

ऐसा टेसू वीर कई अट्टालिकाओं वाले भवन में अपनी सात रानियों के साथ रहता है। उसकी विजयवाहिनी के घण्टों की आवाज से नगर बसते और उजडते हैं।

कुछ अन्य गीतों में कुछ और विचित्र कथन है

टेसू मूते घर बल्लाय, चकिया चलौ सब बह जाय
नॉन कौ डबला घरई में रै जाय।
र र र र र र र र र
टेसू टेसू काँ गये ते, हथिया खिलाउन गये तें।
हथिया ने कीक मारी, दौरे परे पच्चीसा।
पच्चीसन की जोड़ी आई, बिलैया जूझ गई
सास बहू रुठ गई, सास कौ टूटौ घूटौ(घुटना)।
बहू कौ करम फूटौ।
र र र र र र र र र
इमली की ताड ताड चढ़ी पतंग, हाथी घोडा लै गये डंक
डंका बाकौ कैसो बाजे, बैरी सारौ हल हल कंपे,
बैरी मों की कैसें खाय, खाय खाय चौकड़िया खाय।
चौकड़िया कुल दिया बुझाय।

टेसू की इन विचित्र अदावतों व प्रशस्तियों के बाद पैसा मान्गने की बात शुरू होती है, दाता की प्रशंसा तथा सदाशीष से–

बडौ दुआरौ, बड़ी अटरिया, बडौ जानके टेसू आये।
मेडन मेडन रौंसा फूलै, बन फूले कचनार।
सदा बखरिया ऐसे फूलें, जी में हाथी झुकें दुआर।
ई में हाथी झुकें हजार।

किन्तु जब कन्जूस बिगडैल दाता का दिल नहीं पसीजता, वह पैसे नहीं देता है, तो टेसू अपना अड़ियलपन प्रकट करते हैं। लड़के गाने लगते है–

टेसू अगड़ करें, टेसू झगड़ करें। टेसू लैई के टरें।
टेसू कौ गई कोऊ न खाय, खाय खाय चौकड़िया खाय।
र र र र र र र र र

त्योहार कैसे मनाते है **Festival Celebration**

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

टेसू बब्बा हेंई खड़े, खाबे को मांगे दही बड़े
दही बड़े में मिर्चा भौत, कल जानें है कानी हौद।
कानी मजम पै चढ़ी पतंग, बापै लेटे टेसू मलंग
टेसू मलंग ने दई तलवार, कूंद परे फलाने परवार।

ये बालक फलाने के स्थान पर उस व्यक्ति का नाम देते हैं– जिसके दरवाजे मान्गने आते हैं। फिर भी जब पैसा नहीं मिलता है–तो बालक जोर जोर से चिल्लाते हैं–

एक पैसा होता तो पन्नी मंगवाते, पन्नी अच्छी होती तो टेसू सजवाते।
टेसू अच्छा होता तो महल बनवाते, महल अच्छा होता तौ चक्की लगवाते।
चक्की अच्छी होती तो आटा पिसवाते, आटा अच्छा होता तो पूड़ी बनवाते।
पूड़ी अच्छी होती तो सास को खवाते, सास अच्छी होती तो गधा पै बैठाते।
गधा अच्छा होता तो डण्डा लगवाते।, डंडा अच्छा होता तो चूल्हे में जलाते।
चूल्हा अच्छा होता तो नदी में बहाते, नदी अच्छी होती तो टेसू मलंग नहाते।

यदि इतना गाने पर पैसा मिल जाता है तो बालक बड़े प्रसन्न होते हैं तथा गाने लगते हैं।

हिरन खुरी भई हिरन खुरी, हिरना मांगै तीन खुरी।
तीन पुरी कौ पाइया, देहरी दूध जमाइया।
देहरी बैठे ककरा, खुशी रहे तेरौ पूतरा।

कभी–कभी कोई वाचाल बालक व्यन्य बाण छोड देता है।

टेसू आये धूम से, टका निकारौ सूम से।

जब तक बालकों को पैसा या अनाज नहीं मिलता है–वे गाते रहते हैं। टेसू को माध्यम बनाकर जाने क्या–क्या ऊटपटांग बातें मिलाकर सन्दर्भहीन(छिपे अर्थ का अवलोकन क्यों नहीं होता?) बातों को टेसू से जोड़कर समूहगान जारी रहता है। यह सचमुच मनोरंजक भी बन जाता है। देखें–

ए.बी.सी.डी.ई.एफ.जी. बामें निकरे पन्डित जी।
पन्डित जी ने बांचौ चिट्ठा, बामै निकरौ नाऔ कौ पट्ठा।
नाऊ के पट्ठा ने मूड़ी मूड, बामै निकरौ पेड कौ डूंड।
पेड़ के डूंड में लग गई सुर्ती, बामै निकरी लाल लाल कुर्ती।
लाल कुर्ती में बन गऔ खाना, बामै निकरौ तोपखाना।
तोपखाने में बन गई खीर, बामै निकरे गंजे फकीर।
गंजे फकीर ने बनाई मड़ैया, बामै निकरे सात बढ़ैया।
सात बढ़इयन ने बनाओ पलंग, बामै बैठे टेसू मलंग।

किसी वृद्ध व्यक्ति को देखकर ये बालक उछलने कूदने लगते हैं। हाथ में टेसू लिये, उनका निशाना वह बेचारा वृद्ध बन जाता है वे गाते हैं–

बब्बा बब्बा काँ गये ते, पतरी छोड़ हँगन गये ते।
पत्तरी लै गओ कउआ, बब्बा हो गऔ नउआ।
नउआ ने मूड़ौ मूड, बब्बा हो गये, रै गये डूँड़।
डूँड़ में धरदओं अंगरा, बब्बा हो गये बन्दरा।
बन्दरा ने चुगी बाती, बब्बा हो गये हाँती।
हाथी ने घरी गैल, बब्बा हो गये बैल।
बैल की टूटी अनियां, बब्बा हो गये बनियाँ।
बब्बा ने बाँटी सिन्नी, बब्बा हो गये हिन्नी।
हिन्नी ऊलै खेत में, बब्बा घुस गये रेत में।

त्योहार कैसे मनाते है Festival Celebration

इस प्रकार बातें मिलाकर टेसू के सैकड़ों गीत मिलते हैं। जो पैसा देता है वह भी मनोविनोदी गीत सुनने के लिये ''और सुनाओ'' कहकर बालकों को उकसाता है तथा चटखारे ले लेकर सुनता है और काफी देर बाद पहले एक पैसा, अधन्ना मिलता था। लेकिन बेचारे बालक इतने अल्पांश के लिये भी यह गाते हैं।

टेसू के खेल या गाने में अमीर–गरीब का अन्तर नहीं होता है। बड़े आदमियों (धनिकों) के पुत्र भी टेसू लेकर मान्गने निकलते हैं। यह भिक्षा नहीं टेसू का हक है। बुन्देलखन्ड के गान्वों में लोग वर्ष भर इंतजार करते हैं कि कब क्वार के महीने का उत्तरार्द्ध आये और टेसू दरवाजे पर मान्गने आये।

चित्र

बान्दा में जब से मुस्लिम शासको का आग़ाज हुआ, आना हुआ तो निश्चित रूप से मोहर्रम ताजिया और इसी तरह के अन्य मुस्लिम कार्यक्रम भी आवश्यक रुप से शुरू हो गए। ताजियों के पीछे चलने वाले लोगों को सवारियां का जुलूस कहते हैं। उस वक्त जुलूस बान्दा शहर में ही निकलता था लेकिन अब अन्य स्थानों व नगरों में भी निकलने लगा है। कृष्ण सिह 1735 ई (नवाब अली बहादुर प्रथम) के समय से बान्दा के यहां केरल के मोपलाओं की एक फौजी दस्ता था जिसका कमांडिंग ऑफिसर एक फ्रांसीसी ऑफिसर बरन था, का बनाया हुआ एक विशाल इमामबाड़ा जिसे बरन साहब का इमामबाड़ा कहा जाता था, गूलर नाका में था। इस इमारत को 1857 के स्वतन्त्रता सन्ग्राम के दौरान अंग्रेज ने गोलाबारी करके नष्ट कर दिया और जाहिर है कि इस खाली हुए स्थान पर बान्दा के मुसलमानों में अपना नया इमामबाड़ा बनवा लिया। यहां मौपला मोहर्रम के दिनों में आग के साथ खेल किया करते थे।

मोहर्रम का चांद नजर आने पर, बान्दा में बेगम के अहाते से, जो अब्बासी बेगम के नाम से जानी जाती थी और मीर अकबर अली खान की बीवी थी, ताजिया का जुलूस निकलता था। पहले मोहर्रम को रामप्रसाद चिकवा का ताजिया, तीसरी मोहर्रम को जुलाहों का, चौथी मोहर्रम को दरी वालों का तो पांचवीं तारीख को मनिहारों का छठा तारीख को नद्दाफान व अशरफ बाजे वाले का व मेहरों का ताजिया उठाया जाता था सातवीं तारीख को अलमों का जुलूस उठाया जाता था इसी रात में पीरा के ईमामबाडें से बतासे वाले का ताजिया, मेहंदी और रहुनिया के ईमामबाडे से, मनिहारों के ताजिया निकलते थे। आठवीं मोहर्रम को अर्दली बाजार से मिर्जा का जालीदार ताजिया और दुलीचंद का ताजिया निकाला करता था। नवी तारीख को बर्न साहब के इमामबाडें से मोपलाओं का ताजिया उठता था।

दसवीं तारीख अथवा 10वीं मोहरम को सारे ताजियों का जुलूस निकलता है और बलखण्डी नाका पर जमा होते हैं और फिर आगे बढ़ते हुए कर्बला में दफन करके त्योहार खत्म किया जाता था। मोहर्रम की रात को कोई ताजिया नहीं उठाया जाता, कहा जाता है कि नवी तारीख को वर्न साहब के ईमान वाडे से मोपलावों का ताजा उठाया जाता था जो बहुत बड़ा होता था

मुस्लिम साल के पांचवा महीना रबी उल अव्वल पर एक जुलूस निकलता था जो मोहल्ला कालवनगंज खान का मस्जिद सरवर से होता हुआ कोतवाली बाजार चौक बाजार, सराय नवाब साहब के सामने से गुजरा हुआ छावनी की मस्जिद में पहुंचता है आगे बढ़ते हुए मोहल्ला गूलर नाका से गुजर कर जामा मस्जिद पर पहुंचता था/है और समाप्त हो जाता था/है।

बान्दा में गाने बजाने वाले तथा सन्गीतकार भी रहे हैं और उनकी बहुत चर्चा होती रही है नवाब के समय में उनके दिलचस्पी की वजह से एक पूरा मोहल्ला है जिसे कलावंतपुरा कहते हैं

इमामबाड़ा–

रामा का इमामबाड़ा, भाऊराम तय्या का इमामबाड़ा

पूरे भारत में शायद बान्दा एक ऐसा इकलौता जिला है, जहां मुहर्रम की शुरुआत ही एक ब्राह्मण परिवार ने की थी।

बान्दा में 275 (वर्तमान 2025ईस्वी में) साल पहले मोहर्रम की शुरुआत पुणे से आये एक मराठा परिवार ने की थी। इमामबाड़ों में बान्दा का सबसे ऐतिहासिक और पुराना रामा का इमामबाड़ा है। इमामबाड़े की स्थापना 1750 ईस्वी

में पुणे से आये मराठा ब्राह्मण रामा राव ने की थी। यह इमामबाड़ा बान्दा का पहला इमामबाड़ा था। बान्दा में पहली बार इमाम हुसैन की याद में ढाल उठाई गई थी। जनश्रुति के अनुसार, तब से लेकर आज तक रामा के वंशज मुहर्रम के 10 दिन नंगे पैर रहकर, जमीन में सोकर और व्रत रखकर इस परम्परा को निभाते चले आ रहे हैं। निवास कहां है पता नहीं चला।

1765 ईस्वी में इसी परिवार की महिला लक्ष्मी और उनके परिजन भाऊराम ने एक दूसरा इमामबाड़ा स्थापित किया जो भाऊराम तय्या का इमामबाड़ा के नाम से जाना जाता है। 70प्रतिशत हिन्दू हुसैन की आस्था में सराबोर होकर ढाल निकालते हैं। आग के अलाव में कूदकर अपनी श्रद्धा का प्रदर्शन करते हैं।

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

सन्दर्भ सौजन्य साभार

आदरणीय बापू दीन त्रिपाठी,निवासी ग्राम अछरौड़, बान्दा के द्वारा बताए गए परम्पराओं को स्मरण कर लिख पाया।

लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी के द्वारा प्रत्यक्षदर्शी होते हुए वर्णन लिखाया

1 ऋग्वेद 8/47 /4
2 अथर्ववेद 9/8/22
3 सान्निध्यं हंइम, सुतीरे द्रक्ष्यते जनः। कालप्रिये मध्यान्हे, पराहणे चात्र नित्यशः।।
4 जिला जालौन गजेटियर (1921) परिशिष्ट पृ034
5 दैनिक भास्कर 28जुलाई 2023
6 हिन्दी के उपन्यासों में बुन्देलखण्ड p60,61 2015.269019
7 बुन्देलखण्ड की चित्रकला 1-19,72015.273688
8 दतिया जिला गजेटियर पृष्ठ310,
9 प्रभुभक्तिडाट नेट से साभार

10	हनुमत साधना—सूर्यअन्क, सम्पादकपृ0 40,	मदनमोहन वैद्य
11	सूर्य पूजा की व्यापकता कल्याण सूर्य अंक पृ0410	डा0 सुरेश प्रत राय
12	भारतीय पुरातत्व में सूर्य, कल्याण, सूर्यअंक पृ0423	प्रो0 कृष्णदत्त बाजपेयी
13	भारत भारतीपृ031 40 वां सस्करण	राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त
14	सूर्य पूजा की परम्परा और प्रतिमाएँ, कल्याण सूर्य अंक पृ0414,	आचार्य बल्देव उपाध्याय
15	श्रीबालाजीः देवों में देव, पृ029,	हरिमोहनलाल श्रीवास्तव
16	बुन्देलखण्ड और सूर्योपासना (उड़ान स्मारिका पृ026)	डा0 काशीप्रसाद त्रिपाठी
17	भारत के अत्यन्त प्रसिद्ध तीन प्राचीन सूर्य मन्दिर, कल्याण सूर्य अंक पृ427	पं0 जानकीनाथ शर्मा
18	प्राच्यविद्या निबन्धावली भाग—4, पृ077—78	डा0 वी0वी0 मिराशी
19	चन्देलकालीन महोबा और जनपद हमीरपुर के पुरावशेष, पृ049	वासुदेव चौरसिया
20	विरासत	डा0 वीना विद्यार्थी एवम् डा0 सुरेन्द्र सिंह चौहान
21	पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट, महरौनी, ललितपुर, पृ020	डा0 अंबिकाप्रसाद सिंह
22	मड़खेरा का सूर्यमन्दिर, टीकमगढ़ दर्शन—मंगलप्रमात, पृ062	कृष्णानन्द गुप्त
23	रहली का सूर्यमन्दिर, पृ014—15	जी0 एल0 रायकवार
24	मध्यप्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रंथ, पृ0357	डा0 राजकुमार शर्मा
25	वैदिक सूर्य का महत्व और मन्दिर तथा कल्याण सूर्य अंकपृ0417	श्री सावलिया
26	वैदिक सूर्य का महत्व और मन्दिर बुन्देलखण्ड और	श्री सावलिया बिहारीलाल वर्मा
27	सूर्योपासना (उड़ान, पृ026)	डा0 के0पी0 त्रिपाठी
28	म0प्र0 के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रंथ, पृ0358	डा0 राजकुमार शर्मा
29	पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट (महरौनी)तथा (जखौरा) (पृ0क्रमशः22,31, 32)	डा0 अंबिकाप्रसाद सिंह
30	बुन्देलखण्ड की कतिपय सूर्य प्रतिमायें (दी ग्लोरी दैट वाज बुन्देलखण्ड पृष्ठ387)	रमाशंकर
31	मध्यप्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रंथ पृ0357 एवम् 358	डा0 राजकुमार शर्मा
32	कालप्रियनाथ सूर्यमन्दिर की खोजयात्रा (सप्तदल पृ0144)	अयोध्याप्रसाद गुप्त कुमुद

त्योहार कैसे मनाते है Festival Celebration

33 सूर्यपूजाबुन्देलखण्ड का लोक जीवन पृ064 अयोध्याप्रसाद गुप्त कुमुद

34 सान्स्कृतिक बुन्देलखण्ड अयोध्याप्रसाद गुप्त कुमुद

35 https://www.mpgkpdf.com/2018/12/mp-ke-tyohar-festival-of-mp-in-hindi.html

36 ीजजचेरूध्ध्ूण्झींांतण्बवउध्सवबंसध्नजजंत.चतंकमौध्इंदकंध्दमेूधिमतम.उंतंजीं.इतीउपद.तंउ.तंवे.जंतजमक.जीम.मिजपअंस.व.उिनींततंउ.131609766णेजउस

ठनदकमसींदक57 अपदपजं
कक उवदल उंअेलं उंही बीपजतावव्ज अपेीमी
ठंदकं भ्पेज जलवी कमजंपस िंदप मजब नतस
|कक मदह उवदजी
5 बान्दा हिस्ट्री वेलकम सिस्टम
डंपद इववा व बिवचल
ठनदकमसींदक57 अपदपजं
पेज63